भाव-चिन्तन—

गोलोक
एक परिवार

इस पुस्तकको अथवा इसके किसी अंशको कहीं प्रकाशित करने
अथवा किसी भी भाषामें अनूदित करनेका सबको
अधिकार है।

卐

लेखक :
सुदर्शनसिंह 'चक्र'

卐

श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवा-संस्थान, मथुरा २८१००१

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण जन्मस्थान-सेवा-संस्थान

मथुरा—२८१ ००१

●

प्रकाशन तिथिः

मकर संक्रांति सं० २०४१

१४ जनवरी १९८५ ई०

●

प्रथम संस्करण

२१०० प्रतियाँ

●

मूल्य : बारह रुपये

●

मुद्रक :

मयूर प्रेस

ब्रद्रीनगर, दरेसी रोड, मथुरा,

फोन नं० ४४८४

अनुक्रमणिका

अपनी बात—

अतीन्द्रिय तत्त्वका वर्णन सदा सांकेतिक ही होगा और अनेक रूप होगा; क्योंकि दो संकेत करने वालोंके संकेतोंमें एकरूपता कठिन ही है। कोई पक्षी बोलता है तो वह क्या कहता है, इसके सम्बन्धमें बचपनमें एक कहानी सुनी है।

भुजंगी पक्षी सबेरे बोल रहा था। दो मित्रोंमें चर्चा चली। एकने कहा—'पक्षी कहता है—कर मत दहशत।'

दूसरे ने कहा—'नहीं, यह कहता है—दौड़ लगा भरसक।'

दोनोंने तीसरेसे पूछना तै किया। एक पहलवानजीसे पूछा तो वे बोले—'तुम दोनों इतना भी नहीं जानते? सुनो वह कहता है—दण्ड-बैठक कसरत।'

बुढ़िया सब्जी बेचने वालीने बतलाया—'आलू बैंगन अदरख।'

एक साधुका मत था—'राम-लक्ष्मण दशरथ।'

पक्षी एक और उसकी बोली एक; किन्तु उसके स्वरका संकेत सबका पृथक-पृथक। अतः मेरा यह वर्णन भी यदि आपके कहीं पढ़े-सुने वर्णनसे पृथक लगे तो मान लीजिये कि मेरे संकेतकी पद्धति मेरी भावनाके अनुसार है।

पुराणोंमें और सत्पुरुषोंके ग्रन्थोंमें भी अनेक दिव्य लोकोंके वर्णन हैं और उन वर्णनोंमें भी बहुत अन्तर है; क्योंकि दिव्य लोक अतीन्द्रिय लोक हैं, भावलोक हैं।

यह हमारा स्थूल जगत आधिभौतिक जगत है। यह इन्द्रियगम्य है। प्रत्यक्ष है। यन्त्रोंकी सहायतासे इन्द्रियोंकी शक्ति बहुत अधिक बढ़ायी जा सकती है। विज्ञान यही करता है। इस स्थूल जगतके विषयमें खोज तथा तर्क दोनोंकी गति है।

अध्यात्म शास्त्र (श्रुति) आधारित बुद्धि गम्य और श्रुतिको छोड़ देंगे तो वह बौद्ध तत्त्व—शून्य रह जायगा।

अधिभूत और अध्यात्मके मध्य एक तत्त्व है अधिदेव। जीवनमें भी शरीर और बुद्धिके अतिरिक्त एक भावना तत्त्व है। हमारा सम्पूर्ण सामाजिक व्यवहार भावना-नियन्त्रित है। भावनाको न मन्त्र प्रत्यक्ष कर सकते, न तर्कका विषय बना सकते। यह भावतत्त्व ही अधिदेव है। यह श्रद्धैक गम्य है।

अध्यात्म-चिन्तनमें लगी बुद्धि 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' कहे या 'शून्यं शून्यम्', सम्पूर्ण जगतको स्वप्न माननेके अतिरिक्त उसके पास उपाय नहीं। स्वप्न किसका ? किन संस्कारोंके कारण ? ये प्रश्न आप वहां करेंगे तो अनुपपत्तियोंमें उलझ जायँगे।

भौतिक विज्ञान अपनी शोधमें भले परमाणुका भी विखण्डन करके सूक्ष्मकणों तथा पदार्थ शक्ति तक पहुँच गया; किन्तु उसके लिए भी 'संयोग' से ही सब होना माननेके अतिरिक्त उपाय नहीं है। उसके सम्मुख समूचा परामनोविज्ञान, सिद्धियां, चमत्कार आदि सहस्रों अनुत्तरित प्रश्न हैं।

अधिदेव जगतका विचार हिन्दू धर्मको छोड़कर किसीने किया ही नहीं। केवल सनातन धर्म अधिदेवता मानता है और अधिदेव माननेपर ईश्वर स्वतः सगुण-साकार सिद्ध हो जाता है। ईश्वर सगुण साकार है तो उसका आकार ?

बस—बात सांकेतिक स्थितिमें पहुँच गयी। ईश्वर ही सब है तो सब नाम रूप भी वही है। इस नाम-रूपात्मक जगतकी वही मूल सत्ता है। वह समस्त विरुद्ध धर्माश्रय है।

जगतकी खोज विज्ञान करे। तत्त्वानुसन्धान सूक्ष्म बुद्धिका विषय; किन्तु भावना ? भावना हमारे प्रायः पूरे व्यवहार और समाजकी नियन्त्रिका है, यह ध्यानमें रखें तो लगेगा कि यह ईश्वरसे अभिन्न उसीकी शक्ति है।

भावना सबकी भिन्न-भिन्न। अतः ईश्वरके सगुण रूप तथा उसके लोकोंकी संख्या गणनासे परे। इतनेपर भी शास्त्रों और महापुरुषोंने मुख्य आराध्य रूपों तथा उनके लोकोंका वर्णन किया है।

अपनी भावनाके अनुसार श्रीकृष्णके गोलोकका भी नहीं, उसके एक परिवारका वर्णन करनेकी प्रवृत्ति अकारण नहीं है। इसका भी कारण है और उसे आप अनुभव तो कर ही सकते हैं, उससे लाभान्वित भी हो सकते हैं।

भक्ति साधनात्मिका अर्थात् गौणी और मुख्या अर्थात् साध्य रूपा। इनमें-से श्रवण, कीर्तन (नामजप भी) अर्चन, वन्दन, पाद-सेवन तो साधन हैं; किन्तु दास्य, सख्य, वात्सल्य, आत्मनिवेदन (माधुर्य) साध्य हैं। साध्यका अर्थ ही है साधनसे प्राप्त होनेवाला नित्यभाव। जिस भावसे भगवत्प्राप्ति न होती हो या जो भाव शाश्वत न हो, वह साध्य कैसे होगा।

भगवान् सब साध्य भावोंसे प्राप्त होनेवाले और उनके नित्य धाममें सब भावोंका नित्य पोषण। भले माधुर्य सर्वश्रेष्ठ भाव हो; किन्तु नित्यधाममें दूसरा भाव ही नहीं, ऐसा कहना तो दास्य, सख्यादिके साध्यरूपको अस्वीकार करना होगा। ये साध्यभाव हैं तो नित्यधाममें ये नित्य हैं।

संसारमें सम्बन्ध शरीरके माध्यमसे होता है, अतः बहुत कम भावनात्मक होता है और शरीरके माध्यमसे होनेवाले सम्बन्धके समान दृढ़ तो कदाचित ही होता है; किन्तु भगवान् सच्चिदानन्दघन भावात्मा हैं, अतः उनसे सम्बन्ध होता ही भावात्मक है। दास्य, सख्यादि भाव ही दृढ़ होकर साध्याभक्ति हैं या और कुछ ?

एक संत कहते थे—'भगवान् माननेसे अपने हो जाते हैं।' माननेका अर्थ भाव कर लेना। अब आप कह सकते हो कि यह कल्पित्त है; किन्तु संसार कल्पित है या वास्तविक ?

वैष्णवाचार्य मानते हैं कि मोक्ष ज्ञानसे होता है और ज्ञान है नित्य भगवद्धाममें जो अपना स्वरूप है, उसे जान लेना। धाम नित्य, उसमें वह स्वरूप नित्य और उससे भगवान्का वह सम्बन्ध नित्य।

ऐसी अवस्थामें यहाँ हम जो भाव करेंगे, उस कल्पित भावकी क्या स्थिति होगी ?

यह भाव दो प्रकार का होता है—१. किसीकी प्रेरणासे (जैसे आज-कल मधुर भावकी दीक्षा देनेवाले कोई सखी, मञ्जरी या लता नाम

रखकर सखी भाव बतला देते हैं) अथवा स्वयं किसी भावमें गौरव बुद्धि होनेसे उसे अपनेमें मान लेना। २. किसी भावका हृदयमें स्वतः स्फुरण और उसकी स्वतः दृढ़ता।

महापुरुषोंका कहना है—'दास्य सार्वभौम भाव है। साधनावस्थामें सबमें रहता है; जीवको अपनी ओरसे साधन करते हुए दास्य ही अपनाना चाहिये। सख्य, वात्सल्य या माधुर्य भगवान्‌की ओरसे प्रदत्त, स्वयं स्फुरित तथा स्वतः परिपक्व—दृढ़ हो जानेवाले भाव हैं। ये किये नहीं जाते, होते हैं।'

जो किये नहीं जाते, होते हैं—वे कल्पित कैसे होंगे ? जो अन्तर्यामी हृषीकेश है, वही दिव्य लोकाधिप है या नहीं ? जगत जब उस नित्य लोक-का प्रतिबिम्ब है तो नित्य लोकके नित्य सम्बन्ध यहाँ किन्हीं हृदयोंमें हृषीकेश ही तो स्फुरित करेगा। यही स्फुरण ही उसकी ओरसे भाव-दान है।

नित्य लोक तथा नित्य भगवत्स्वरूपोंमें भी कुछ भावात्मक अन्तर रहता है और वह अन्तर उसके अवतारोंमें स्पष्ट होता है। जैसे सतयुगमें होनेवाला वामनावतार अवतारकी घटीमें ही वामनकाय हो गया और वही शरीर बलिकी यज्ञशालामें विराट् बन गया। ऐसे स्वरूपमें तथा ऐसे ही अनन्त ऐश्वर्यरूप भगवान् नारायणके वैकुण्ठमें दास्यका ही सम्पूर्ण परिपाक सम्भव है। वहाँ सख्य, वात्सल्य, माधुर्य कादाचित्क ही रहेंगे और वह भी स्वतन्त्र नहीं होंगे। जैसे आण्डालका माधुर्य उन्हें भगवती श्री से एक कर देता है।

श्रीराम मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं। उनके नित्यधाम साकेतमें सख्य, माधुर्यकी वही तो स्थिति होगी जो उनके अवतार कालमें अयोध्यामें थी। वे संकोचीनाथ तो कपियों, निषादको भी सखा मानते थे; किन्तु भरत जैसे भाई भी अपनेको सदा सेवक ही मानते रहे। साकेतमें उन्मुक्त अवकाश दास्य तथा वात्सल्यको है।

गोलोकमें भी सब भावोंको उन्मुक्त अवकाश नहीं। दास्य वहाँ पूर्ण परिपाक नहीं पाता। कन्हाईके प्रति सेवक-सेविकाओंका भी वात्सल्य। उन्मुक्त अवकाश वहाँ सख्य, वात्सल्य और माधुर्यको है।

'नित्य लोकमें किसीका अन्य किसीसे कोई सम्बन्ध नहीं होता। सबका सम्बन्ध भगवान्‌से ही होता है।' यह बात एक विशिष्ठ विद्वानकी है; किन्तु तथ्यसे दूर है। यदि यह सत्य होती तो उस नित्य लोकका प्रतिबिम्ब यह जगत नहीं होता। नित्य लोकमें होते हैं सबके सब सम्बन्ध; किन्तु वे सम्बन्ध भगवान्‌के लिए, उनकी लीला एवं प्रीतिके संवर्धक-सहायक, परि-पोषक होते हैं।

जैसे अनन्त ब्रह्माण्डोंमें अनन्त कोटि जीवोंमें-से प्रत्येकके अन्तःकरणमें वही अन्तर्यामी हृषीकेश है, वैसे ही सभी नित्य लोकोंमें प्रत्येकको अनुभव यही होता है कि लोकपति भगवान् सदा उसीके साथ हैं और उसीकी भावनाके अनुसार नित्य व्यवहार करते हैं।

जहाँ तक गोलोकको बात है, प्रत्येकका घर-परिवार बाबा नन्द, मैया यशोदा, माँ रोहिणी और दाऊदादाको अपने परिवारका अंग ही समझता है। इनका भी व्यवहार सबसे अपने परिवार जैसा ही है। अतः कोई भी परिवारके सदस्योंकी गणना करेगा तो उसमें गणना इन्हींसे आरम्भ होगी।

कन्हाईकी बात इन गुरुजनोंसे तनिक भिन्न। कन्हाईके सम्बन्धमें प्रत्येकका अनुभव यह कि कन्हाई उसीके साथ सदा लगा रहता है। कन्हाईका काम ही उसके बिना नहीं चलता। भले सबसे कन्हाईका व्यवहार भिन्न-भिन्न प्रकारका हो।

जिसके रोम-रोममें कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड हों, उसकी परिमिति कैसी? प्रकृतिमें ब्रह्माण्डोंकी संख्या-गणना भी सम्भव नहीं है और यह सृष्टि जिस नित्य लोकका प्रतिबिम्ब है, वह अनन्तका स्वरूपभूत लोक अनन्त होगा या नहीं? अतः उस अनन्त लोकमें कितने परिवार, कितने निवासी, यह कोई ऋषि-बुद्धि भी सोच नहीं सकी।

इस सम्बन्धमें केवल एक बात कही जा सकती है कि पुराणादिके वर्णनोंके अनुसार भी जैसे वैकुण्ठमें पुरुष-पार्षदोंका बाहुल्य है, गोलोकमें स्त्रियोंका बाहुल्य है। यह इसलिए भी कि माधुर्य भावापन्न अधिकांश जन सखी भाव अपनाते हैं और श्रीकृष्ण उनके प्रायः आलम्बन होते हैं।

इसका दूसरा कारण भी है कि गोलोकनाथ जैसे बहु-नायक हैं, वैसे ही उनके सखा आदि भी एक पत्नीव्रती नहीं हैं। केवल बाबा ही यह व्रत ब्रहाँ

निभाते हैं। वहाँ तो दाऊ दादाका भी अपना विशाल अन्तःपुर है। रेवती भाभी एकाकिनी नहीं हैं। उनकी सखी, सेविकाओंका समूह विस्तृत है।

ऐसे गोलोकके किसी एक परिवारका वर्णन क्यों? यह इसलिए कि अनन्त परिवारोंका वर्णन सम्भव नहीं और पुराणोंमें तथा विशेषतः गौड़ीय महापुरुषोंके ग्रन्थोंमें श्रीराधा, उनकी मुख्य सखियों और उनके निकुञ्जका वर्णन बहुत है।

सभी परिवार कन्हाईके ही, अतः कन्हाईके परिवारका वर्णन तो सम्भव नहीं। इसके कुञ्ज, निकुञ्ज तथा निभृत-निकुञ्जतकका वर्णन पर्याप्त हुआ है; किन्तु वह सब केवल मधुर भावापन्न—सखी भावोपासकोंके उपयोगकी वस्तु है। मैं इस विवादमें नहीं पड़ूँगा कि यह श्रीराधाके अन्तः-पुरका वर्णन सार्वजनिक होना चाहिए या नहीं और उसके कितने तथा कौन अधिकारी हैं।

सर्वश्रेष्ठ भाव मधुर सही; किन्तु दास्य, सख्य, वात्सल्य भी भाव हैं और गोलोक केवल निकुञ्ज या निभृत-निकुञ्ज मात्र नहीं है, उसके बाहर भी है। उसमें दास्यादिका पूर्ण परिपाक कैसे होता है, इसे भी जाननेको उत्सुक भावुक प्राण हैं।

मैं एक भाई (आप चचेरे भाई कह लो) तथा प्रमुख सखाके परिवारका वर्णन इसलिए ले रहा हूँ कि गोलोकमें कन्हाई दास्यको भी वात्सल्यमें परिवर्तित कर लेता है और सख्यमें वात्सल्यके वर्णनको भी अवकाश है।

स्वभावतः मेरा चित्त जिससे एकात्मता स्थापित कर पाता है, उसी-का वर्णन मैं अधिक स्पष्ट और ठीक-ठीक कर सकता हूँ। अतः यह वर्णन भद्रसेनके परिवारका वर्णन है।

भद्रसेन नन्दबाबाके सबसे छोटे भाई नन्दनजीका बड़ा पुत्र; किन्तु जिसने अपनी मैयाका दूध कितना पिया, कहना कठिन है। मैया यशोदाके अंकमें ही पला, उसीको मैया कहनेवाला, उसी नन्दगृहका यह तीसरा—नहीं, दूसरा कुमार; क्योंकि तीसरा तो इससे दस महीने छोटा कन्हाई है। इसका सगा छोटा भाई तोक; किन्तु यह नन्दनजीको चाचा और उनकी पत्नी अतुलाको चाची कहनेवाला सगे भाई तोकको चाचाका पुत्र कहता है।

इस वर्णनसे पाठकको प्रयोजन? उसका क्या हित होगा? सबका परमहित कन्हाईके स्मरणमें है, इसमें आपको कोई आपत्ति नहीं होगी।

कन्हाईका स्मरण इसमें होता रहेगा। इस अलबेले नन्दलालकी अनेक रूपोंमें झांकी मिलेगी। इसके स्वभावका कुछ परिचय प्राप्त होगा। इस परिचयसे इसमें प्रीति—स्नेह जागेगा। जागा है तो उल्लसित होगा।

यदि आपके हृदयमें भगवान्के किसी भी सगुण-साकार रूपके प्रति ममत्वका कोई भाव है तो वह स्पष्टता प्राप्त करेगा। उसमें कहीं कोई असम्भावना हुई तो मिट जायगी और यदि वह स्पष्ट, असन्दिग्ध हुआ तो यह वर्णन आपको प्रिय लगेगा। अपने ही जैसे किसीका अथवा अपने स्वजन-का वर्णन लगेगा।

स्पष्ट है कि यह वर्णन निखिल लोक महेश्वरको मानकर उसके सगुण-साकार स्वरूपको मानने वालोंके लिए ही है। जो ईश्वरको ही नहीं मानते, उन तर्क दग्ध लोगोंके लिए नहीं है और जो उसे मानकर भी सगुण-साकार, स्वजन होनेकी संभावना स्वीकार नहीं करते। मायादेवीके उन अपने आवर्तमें पड़े बुद्धिमान मन्य लोगोंके लिए भी नहीं है।

निर्गुण-निराकारवादी तो अपनी ही सत्ताको ब्रह्म मानते हैं। माता-पिता, गुरु आदिका उनके लिए स्वप्न कभी-कभी आता है। उन स्वप्नदर्शी महाप्राणोंको किसी गोपकुमारकी चर्चाका क्या प्रयोजन।

अन्तमें इतना और कि यह सब वर्णन केवल सांकेतिक है। इस मर्त्यलोकके वर्णनके जैसा इसलिये है कि हमारी-आपकी समझमें कुछ आ सके। अन्यथा जहाँ देश और कालकी गति नहीं, जिसमें सब देश-काल कल्पित हैं, उस अतीन्द्रिय, मन-बुद्धिसे परे, चिद्घन लोकमें आनन्दकन्द कैसे क्रीड़ा करता है, उसके स्वजन-परिकर उससे अभिन्न होकर भी भिन्न और पृथक होकर भी तद्गत प्राण-जीवन कैसे हैं, वहाँ इन्द्रिय व्यवहार न होते हुए भी कैसे है, यह शब्दोंमें स्पष्ट कर पाना सम्भव नहीं है। अतः वर्णनको सर्वथा ज्योंका त्यों न मानकर यत्किञ्चित् संकेत करनेवाला ही समझेंगे तो ठीक समझेंगे।

शुकताल
३०-४-८३

—सुदर्शनसिंह 'चक्र'

गोलोक–

अवश्य आप जानना चाहेंगे कि गोलोक कहाँ है ?

इस जिज्ञासाका कारण है। स्वर्ग, नरक, ब्रह्म लोक और वैकुण्ठके भी स्थानोंका वर्णन है। उनका वर्णन ऐसा है जैसे वे किसी स्थान-विशेषमें हों।

पुराणों में—श्रीमद्‌भागवतमें भी चक्रके भयसे संत्रस्त दुर्वासाजीके ब्रह्मलोक, कैलास और वैकुण्ठ जानेका वर्णन है। इसी प्रकार रामचरित-मानसमें काक भुशुण्डिके अनेक लोकोंमें जानेका वर्णन है। सनकादि कुमार वैकुण्ठ गये ही थे, जब उन्होंने जय-विजयको शाप दिया। इस प्रकार जब ब्रह्मलोक, शिवलोक, वैकुण्ठ स्थान-विशेष हैं और वहाँ देवता और ऋषि ही नहीं, हिरण्यकशिपु और भस्मासुर तक जा सकते हैं तो गोलोकके सम्बन्धमें जिज्ञासा स्वाभाविक है।

अनेक आचार्योंने ब्रह्मलोकका ही एक भाग वैकुण्ठ माना है। कुछ विद्वान साकेत, गोलोक को भी ब्रह्मलोक या वैकुण्ठका भाग मानते हैं। ऐसा माननेमें जो असंगति है, उसपर उनका ध्यान ही नहीं गया है।

प्रजापति नामका एक आकाशीय पिण्ड (तारा) है। ध्रुव लोक ध्रुव-तारकमें है तो प्रजापति ब्रह्मलोक होगा, यह सोचा जा सकता है। एक जर्मन विद्वानकी पुस्तकका अंग्रेजी अनुवाद छपा है—'ईश्वर ग्रहान्तरवासी है ?' पृथ्वीपर ग्रहान्तरसे मनुष्य आये—इसके प्रमाण हैं उसमें और अपने पुराण मानते हैं कि सृष्टिका प्रारम्भ ब्रह्मलोकमें हुआ। स्वायम्भुवमनु उनकी पत्नी श्रद्धा तथा ब्रह्माजीके दस प्रजापति पुत्र मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष और नारदजी ब्रह्मलोकमें उत्पन्न हुए। वहाँसे ये और इनके कई पुत्र कर्दम, कश्यपादि ब्रह्मलोकसे समय-समयपर पृथ्वीपर आये।

इस विषयमें मुख्य बात ध्यानमें रखनेकी यह है कि ब्रह्माण्डका केन्द्र सूर्य है। एक ब्रह्माण्डको विज्ञानकी भाषामें एक सौर जगत् कहा जाता है। विज्ञान भी अनन्त सूर्य (तारे) मानता है और पुराण तो अनन्त ब्रह्माण्ड

मानता ही है। ये सब ब्रह्माण्ड माया निर्मित, मायिक जगत (माया मण्डल) में ही हैं।

'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।'

श्रुति कहती है—इस परम पुरुषके एक पाद (एकांश) में समस्त ब्रह्माण्ड हैं और इसके तीन पादमें अविनाशी नित्य लोक हैं।

अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड माया मण्डलमें हैं। इनमें-से प्रत्येक ब्रह्माण्डके सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, पालक विष्णु और संहारक रुद्र हैं। यह बात पुराणोंसे स्पष्ट है। इनके धाम भी उसी ब्रह्माण्डके अन्तर्गत हैं, जिन्हें ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ और शिवलोक या कैलास कहा जाता है। इन्हीं लोकों तक किसी ब्रह्माण्ड-निवासीकी गति है। वह तपः-शक्ति प्राप्त असुर हो, देवताओंमें कोई हों, ऋषि हों या ब्रह्मा हों।

कुछ ग्रन्थोंमें (जैसे गर्ग-संहितादिमें) ब्रह्माके साकेत या गोलोक जानेका वर्णन है; किन्तु वह किसी बातको समझानेके लिए लाक्षणिक वर्णन है। उसे तथ्य नहीं गिनना चाहिए। ऐसा माननेका कारण है।

देश, काल और पदार्थ माया-कल्पित हैं। अतः मायाके क्षेत्रसे बाहर देश और काल ही नहीं हैं। अतः देश-कालमें स्थित कोई भी माया-क्षेत्रसे बाहर जा नहीं सकता। ब्रह्माण्डकी सब समस्या उसीमें उत्पन्न होती है और उसीके किसी लोकके अधिपति उसका समाधान करते हैं। जैसे सूर्य प्रत्येक ब्रह्माण्डमें हैं, गणपति और शक्ति तथा उनके लोक भी हैं।

देश-काल जिसमें कल्पित होते हैं, उन परमपुरुषके नित्य-लोक स्थान विशेष नहीं हो सकते। स्थान विशेषका वर्णन तो ब्रह्माण्डके लोकोंके समान इसलिए होता है; क्योंकि उस अतीन्द्रिय, मनकी गतिसे भी परे लोक (स्थिति) को समझानेका दूसरा उपाय नहीं है।

वैष्णव-आचार्य और ग्रन्थ नाम, रूप, लीला, धाम इन चारोंको अभिन्न और भगवत्स्वरूप ही मानते हैं। प्रकृतिके क्षेत्रमें स्वरूप एवं लीलाके समान ही धामका भी आविर्भाव मानते हैं। जहाँ उन धामोंका आविर्भाव हुआ, वे स्थल उन धामोंके नामसे जाने जाते हैं; किन्तु लीलाके साथ धामका भी तिरोभाव माना जाता है। जैसे अधिकारी भक्तके लिए रूप या लीलाका प्राकट्य होता है, धामका भी प्राकट्य होता है।

है। एक चिन्मात्र ब्रह्म और दूसरा चिद्घन धाम। ब्रह्म निर्गुण, निर्विशेष, निर्धर्मक है और धाम सगुण, साकार, सब विरुद्ध धर्मोंका आश्रय है। लेकिन दोनों अभिन्न हैं, अतः तत्त्व अद्वितीय ही है।

धाम अनेक नहीं हैं, यह आप इतने विवेचनसे अब तक समझ गये होंगे। अनेकता देश और कालके कारण होती है। देश-काल मायिक हैं। इनका वहाँ प्रवेश ही नहीं है। तब प्रश्न उठता है कि गोलोक, साकेत, वैकुण्ठ (पर वैकुण्ठ) पर शिवलोक आदि धामोंका वर्णन क्यों है ?

धाम भावमय हैं। जैसे एक ही सगुण परमतत्त्व भाव भेदसे श्रीनारायण, शिव, दुर्गा (काली या त्रिपुरा) सूर्य, गणेश, श्रीराम या श्रीकृष्ण रूपमें उपासित होता है, उन-उन रूपोंमें भक्तोंको प्रत्यक्ष होता है और ये सब भगवद्रूप अनेक होकर भी एकके ही हैं, सब नित्य शाश्वत हैं, वैसे ही इनके धाम भी नित्य, शाश्वत हैं। अनेक होकर भी एक हैं और इनकी भिन्नता भी भावके कारण है।

निर्गुण तत्त्वके समान सगुण तत्त्व भी अनिर्वचनीय और अवाङ्मनस-गोचर ही है। इसलिए भगवद् धामोंका जो भी वर्णन प्राप्त होता है, सब लौकिक वर्णनके समान समझानेके लिए ही है।

देहेन्द्रियासुहीनानां वैकुण्ठपुरवासिनाम्।
देहसम्बन्धसम्बद्धमेतदाख्यातुमर्हसि॥

—भागवत ७।१।३४

शरीर, इन्द्रिय और प्राणका भेद वैकुण्ठवासियोंमें नहीं होता। उनका आकार ही चिद्घन है।

यह वर्णन भी इस ब्रह्माण्डके वैकुण्ठका है, जहाँ जाकर सनकादिने जय-विजयको शाप दिया। पर वैकुण्ठकी चर्चा तो और भी अद्भुत-अलौकिक होगी। वहाँ देह, इन्द्रिय, प्राणादि सब आनन्दघन। ठीक ऐसा जैसे चीनीके [illegible] बने खिलौनोंके शरीर, इन्द्रियादि सब चीनी। लेकिन लौकिकके समान वर्णनके लिए जैसे कहें—'चीनीके घोड़ेने सोचा।' ऐसा ही लाक्षणिक वर्णन दिव्य धामोंका करनेके अतिरिक्त उपाय नहीं है।

'रघुपति भगति वारि छालितचित, बिनु प्रयास ही सूझै ।
तुलसिदास यह चिद्विलास जग, बूझत बूझत बूझै ।।'

(विनय पत्रिका)

यह जगत जो हमको-आपको जड़ प्रतीत हो रहा है, जड़ नहीं है, चिद्विलास है; किन्तु यह बात तो 'बूझत-बूझत-बूझै' बहुत कठिन बुझौवल (पहेली) है ।

यह चेतनका प्रतिबिम्ब जड़ हो कैसे सकता है ।

भगवान सच्चिदानन्दघन हैं । यह जगत सद्घन है । इसमें चेतन तो प्रतीत होता है; किन्तु सत्ता इन्द्रिय और यन्त्र प्रत्यक्ष है ।

भगवान् आनन्दघन श्रीविग्रह हैं और उनके सब परिकर, पार्षद ऐसे ही आनन्दघन हैं । जगतमें यह आनन्द प्रेमके रूपमें प्रतिभात है । जिसमें आपका प्रेम है, उसमें सब सद्गुण आपको प्रतीत होते हैं । यह प्रेम जागतिक होकर ही विकृत हो रहा है, अन्यथा—

'प्रेम हरी को रूप है, सो हरि प्रेम स्वरूप ।'

जगत् सद्घन और भगवान् आनन्दघन । इन दोनोंसे भिन्न भगवद्-धाम चिद्घन । वह जड़ नहीं है और आनन्दघन तो स्वयं श्रीहरि हैं । उनकी क्रीड़ाका प्रतिष्ठान धाम चिद्घन है ।

शाङ्कर वेदान्तकी भाषामें ब्रह्म चिन्मात्र अर्थात् केवल ज्ञान मात्र है । वस्तुतः भगवान्से सर्वथा अभिन्न, उनका स्वरूपभूत धामतत्त्व ही द्विविध है । एक चिन्मात्र और एक चिद्घन ।

निर्गुण, निराकार, निर्धर्मक ब्रह्मतत्त्व चिन्मात्र है । यह कार्य-कारणातीत निर्विशेषतत्त्व चिन्मात्र है । अद्वितीय है । इसमें व्याप्य नहीं है, अतः इसे व्यापक कहते भी नहीं बनता ।

क्योंकि यही तत्त्व भगवद्धाम-चिद्घन है, व्यापक है । मायाका एक-पाद जिसमें अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं, उसमें भी और उससे परे त्रिपाद् विभूतिमें भी यही है । आप चाहें तो इस धाम तत्त्वको उभय रूप कह सकते

मोह निसा सब सोवनिहारा।
देखहिं सपन अनेक प्रकारा॥
—रामचरितमानस

इस दृश्य जगतको दार्शनिक और शास्त्र भी स्वप्न कहते हैं। इसका सब विस्तार, भूत-भविष्य-वर्तमान-देश-काल-पदार्थ स्वप्न है। ब्रह्माजीकी यह संकल्प-सृष्टि उनका स्वप्न या मनोराज्य है। स्वयं ब्रह्मा भी स्वप्न-सृष्टि हैं, यह बात यहाँ रहने दें।

आप जो स्वप्न देखते हैं, उसके महानगर, उसका दीर्घ काल आपको जागनेपर कहीं स्थान या समय देने योग्य लगता है ? वैज्ञानिक बहुत प्रयत्न करें तो आपके समस्त स्वप्नोंका स्थान आपके मस्तिष्ककी किसी कोषिकाको बतलावेंगे और वह बिचारी स्वयं इतनी बड़ी कि सुईकी नोंकपर कई सौ आ जायें। इतनी नन्ही कोषिकाकी कृति आपके सब स्वप्न।

यह सृष्टि है ही अद्भुत। इसमें सबमें सब समाहित है। हम जिसे ब्रह्माण्ड कहते हैं—वह पूरा सौर जगत प्रत्येक परमाणुमें है और पूरी शक्ति लिये है। परमाणुके केन्द्रमें सूर्यसे कम शक्ति नहीं है। उस प्रोटानको छेड़नेसे ब्रह्माण्डकी प्रलय सम्भव है। उसके चारों ओर अनेक ग्रह (एलक्ट्रान) परिक्रमा करते हैं और तटस्थ कण (न्यूट्रान) की गति तो अब भी अज्ञात है। एक सौर जगतके परमाणुओंकी गणना सम्भव है ?

ऐसे अनन्त सौर जगत जिस माया-मण्डलमें स्वप्नके समान प्रतीति मात्र हैं, वह माया जिस महेश्वरकी है, उसके लोकके विस्तारकी कल्पना वैसी ही उपहासास्पद होगी, जैसे कोई पूरे नीहारिकामण्डल (जिसमें लगभग साढ़े तीन अरब सूर्य हैं) के परमाणुओंकी संख्या-कल्पना करना चाहे।

परवैकुण्ठ, पर शिवलोक, साकेत, गोलोकये उस अनन्त चिद्घन धामके नाम हैं। वह एक है और भावमय है। अतः भावानुरूप उसकी उपलब्धि होती है। वह भावानुरूप उपलब्ध स्वरूप नित्य, शाश्वत है।

उस नित्य धाममें—धाम कोई भी हो, जो भी भगवत्-परिकर-पार्षद हैं, सब भगवान्से अभिन्न आनन्दघन ही हैं। उनके वस्त्राभरणादि सब चिद्रूप या चिद्घन हैं।

गोलोकका तो यहाँ नाम लिया जा रहा है, किन्तु सब नित्य धामोंकी यही स्थिति है; क्योंकि वे तथ्यतः भिन्न नहीं हैं। उनका भेद-भाव भेदके कारण ही है।

गोलोकमें गायें, वृषभ, गोप-गोपियाँ, बालक जो भी हैं, सब नित्य हैं। सबका रूप, रंग, आयु-आकार, वय एवं गुण-व्यवहार सब नित्य है—एक-सा है; किन्तु भावमय होनेके कारण उसमें लीलाके अनुरूप कोई भी परिवर्तन किसी भी समय हो सकता है। ऐसे परिवर्तनमें समय नहीं लगता, केवल भाव-परिवर्तन आवश्यक है। जैसे भगवान् वामन प्रगट हुए तो चतुर्भुज, मुकुट-कुण्डलादि एवं शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये प्रगट हुए।

यत् तद्वपुर्भाति विभूषणायुधैः
अव्यक्त चिद्व्यक्तमधारयद्धरिः।
बभूव तेनैव स वामनो वटुः

(भा. ८।१८।१२)

वस्त्र, आभरण, आयुध भौतिक तो थे नहीं। सब चिद्-व्यक्त थे। वे अव्यक्त हो गये और चतुर्भुज रूप वामन ब्रह्मचारी बन गया। आगे बलिकी यज्ञशालामें यही वामन विराट् बन गये।

भगवद्-धाममें सबमें यह शक्ति है; क्योंकि सबके वस्त्रादि चिद्-व्यक्त ही हैं।

गोलोक श्रीकृष्णका, श्रीकृष्णकी लीलाके लिए, अतः वहाँ जो भी हैं, उनका तथा उनके परिकर-परिवारका सब सम्बन्ध, सब व्यवहार, समस्त अस्तित्व श्रीकृष्णकी लीलाका अंग है, उनकी लीलाको सम्पन्न करनेके लिए है। श्रीकृष्णकी प्रीति, तथा क्रीड़ाको सांगता देनेके लिए ही वहाँ सबका प्रयोजन है।

गोलोकमें सबका जीवन-प्राण श्रीकृष्ण। सबकी सब चेष्टाओंका एकमात्र लक्ष्य श्रीकृष्णको उल्लसित करना; किन्तु इसके लिए सबके व्यवहार भिन्न-भिन्न हैं। उनमें स्तवन ही नहीं है, स्नेह, झगड़ना, डांटना और रूठना मनाना भी है।

सबको लगता है कि श्रीकृष्ण सदा उसीके साथ, उसीके आस-पास, उसीपर दृष्टि लगाये रहते हैं। उसकी ही चेष्टाओंसे प्रमुदित होते हैं। उन श्रीनन्दनन्दनकी प्रीति, प्रफुल्लता ही वहाँका जीवन है।

उस दिव्य-लोकमें ऐन्द्रियक जीवन, इन्द्रिय व्यवहार न होकर भी भरपूर है। इस अर्थमें तो नहीं है कि उससे कोई स्वतृप्ति या क्रीड़ा प्राप्त करता हो; किन्तु इस अर्थमें भरपूर है कि उस व्यवहारसे श्रीकृष्णकी क्रीड़ा सम्पन्न होती है। उन्हें प्रफुल्लता प्राप्त होती है।

वहाँ कालकी दाल नहीं गलती, अतः सबकी जो-जो आयु, आकारादि है, शाश्वत ही है। उसमें कभी कोई परिवर्तन केवल श्रीकृष्णकी इच्छासे उनकी लीलाको सांगता देनेके लिए ही होता है। जैसे रंग-मंचपर अभिनेता अपना रूप-रंग आदि परिवर्तित कर लेता है। लेकिन रंग-मंचके परिवर्तनके समान ही ऐसे परिवर्तन स्थायी नहीं होते।

उदाहरणके लिए सनकादिके शापको निमित्त बनाकर भगवान् नारायणकी लीलाको सांगता देनेके लिए जय-विजय तीन जन्म तक असुर योनिमें पृथ्वीपर आये; किन्तु यह उनको जन्म कर्म-परतन्त्र नहीं था। वे कर्म योनि मानव-शरीरमें दन्तवक्र और शिशुपाल भले बने, उनके कर्म उनके लिए बन्धनके हेतु नहीं बन सके। श्रीहरि उन्हें प्रत्येक जन्ममें सम्हालते रहे और उनका जय-विजय रूप ही उनका नित्यरूप बना।

गोलोक कभी सूना नहीं हुआ करता। वैकुण्ठसे जय-विजय असुर योनिमें आ गये तो वैकुण्ठमें उनके स्थानको दूसरे पार्षद उतने समय चलाते रहे, हुआ यह भी नहीं; क्योंकि जय-विजय असुर होकर धरापर आये तो धराके कालके अनुसार तीन जन्म यहाँ लेते रहे। ये तीनों जन्म ब्रह्माजीके एक दिन (एक कल्प) में हुए और ब्रह्माजीकी पूरी आयु (सौ वर्ष) वैकुण्ठका एक दिन होता है। अतः वैकुण्ठके द्वारपरसे जय-विजयकी यह अनुपस्थिति क्षण भरकी ही हुई।*

---

* 'पलक झपकते' में गोलोकसे भद्रसेनकी अनुपस्थितिका वर्णन देकर कालकी कल्पना समझानेका प्रयत्न किया गया है।

सृष्टिका यह वैविध्य और इसका घटना-बाहुल्य क्यों है ? कैसे है ? इसे मिथ्या या स्वप्न कहकर भले दार्शनिकोंने पिण्ड छुड़ा लिया; किन्तु यह सृष्टि 'चिद्-विलास' है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' में सृष्टिके सब परिवर्तन हैं। यह चिद्-विलास इसीलिए है; क्योंकि यह नित्य लोकका प्रतिबिम्ब है। प्रतिबिम्ब मायामें पड़ा तो मायाकी विकृति उसमें है; किन्तु यह है इसलिए कि नित्य लोकमें वहाँ लीलामय अपनेसे अभिन्न अपने अनन्त चिद्घन साकार परिकरोंके साथ नित्य क्रीड़ा कर रहा है।

स्वप्न अचानक नहीं आते। उनका आधार इस जन्म या अन्य जन्मोंके देखे-सुने या सोचे संस्कार होते हैं। पुराणोंकी सृष्टि प्रक्रियाको ध्यानसे पढ़नेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्माको यह सृष्टि-स्वप्न अचानक नहीं आ गया। उन्होंने एकाग्र होकर दीर्घ काल तक तप (चिन्तन) किया। तब भगवत् कृपासे उनके हृदयमें पूर्व सृष्टिके संस्कार जागृत हुए। (उन्होंने अपने भीतर सृष्टि-दर्शन किया) वे जागृत-संस्कर ही इस सृष्टिके स्वप्नका आधार हैं।

सृष्टि अनादि है; किन्तु इसके वैविध्य, परिवर्तनका मूल ब्रह्माके मानसमें भगवत् कृपासे पड़े नित्य-लोकके प्रतिबिम्ब हैं। वे प्रतिबिम्ब ही सृष्टिके रूपमें प्रतिफलित हैं।

वैष्णवाचार्य मानते हैं कि ज्ञानका स्वरूप है नित्य-लोकमें अपने नित्य-स्वरूप, भगवत-लीलामें अपने स्थानको पहिचान लेना। उसे विस्मृत होकर ही जीव माया-मोह विवश होकर सांसारिक राग-द्वेषमें फँसा, जन्म-मरणके चक्रमें भटक रहा है। अपने नित्य-स्वरूपको पहिचान लेनेपर उसकी प्रीति जो भौतिक नाम-रूपमें लगकर विकृत हो रही है, नित्य भगवत्स्वरूपमें हो जाती है। फलतः उसका जन्म-मरण चक्रमें भटकना समाप्त हो जाता है।

इन नित्य लोकोंको स्थान विशेष होनेके कारण लोक नहीं कहते। ये इसलिए लोक कहे जाते हैं, क्योंकि सृष्टि इन्हींसे आलोकित—दृश्य बनी है।

गोलोक तो सत्य है, नित्य है। वही सर्वत्र है। वह कहाँ नहीं है ? उसे विस्मृत होकर हम इस स्वप्न-सृष्टिको सत्य मान रहे हैं, यही मोहनिन्द्रा है। इस मोहनिद्राका ही भंग होना है।

गोलोकका और उसके एक परिवारका वर्णन उपलक्षण है। इससे उस दिव्य लोकका स्वरूप भी स्पष्ट हो जाता है, जिसमें किसी भी सगुण-साकार स्वरूपोपासककी निष्ठा है। ऐसी निष्ठा है तो अपने आराध्यके साथ अपने सम्बन्धकी कोई भावना भी होगी और वह न भी हो तो उसे भी उस लीलामयपर छोड़िये—

'मोहि तोहि नाते अनेक, मानिये जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरन सरन पावै॥'

—विनय पत्रिका

भद्रसेन-

अभय गोलोकका स्वरूप ही है। फिर जिनके लिए, जिनके सुख-सम्मानके लिए व्रजराजकुमारने स्वयं कमर कस रखी है, वे अभय अशंक नहीं होंगे तो त्रिभुवनमें तो कोई कभी हो ही नहीं सकता। अभय अशंक सहज स्वभाव गोपकुमारका और उनमें भी श्रीकृष्णके सखा जिसे अपना सेनापति मानते हैं, उस भद्रके लिए तो भय और आशंकाका जैसे जन्म ही नहीं हुआ; किन्तु यह बात उसके अपने सम्बन्धमें ही सत्य है। सब ओरसे यह सत्य नहीं है।

कन्हाई बहुत चपल है, बहुत सुकुमार है, बहुत दुर्बल है। उसकी ओरसे सदा, सर्वत्र आशंका रहती है। उसके लिए सदा भय रहता है। यह नन्हा भोला भद्रका छोटा भाई न यह जानता कि कब थक गया और न यही कि इसे कब क्षुधा या प्यास लगी है। यह तो खेलमें लगकर यह भी भूल जाता है कि इसका मुख आतपसे लाल-लाल हो आया है। भद्रको ही इसे पल-पलपर सम्हालना रहता है।

मैया-बाबा और दाऊदादा भी आशा करते हैं कि भद्र कन्हाईको सम्हाले रहेगा। दूसरा कोई कन्हाईको कुछ कहे तो कन्हाई उसे अंगूठा दिखा देगा। भद्रकी बात वह कुछ मान लेता है और भद्र यह सहन भी तो नहीं कर सकता कि दूसरा कोई कन्हाईको कुछ कहे।

भद्र गेहूँये रंगका इकहरे; किन्तु पुष्ट शरीरका है। यह कन्हाईके समान पीली कछनी बाँधता है; किन्तु पटुका ऐसा नीला रखता है कि दाऊदादासे इसका पटुका प्रायः बदलता ही रहता है। घुंघराले केशोंमें श्वेत हंसपिच्छ लगाना इसे प्रिय है। आयुमें कन्हाईसे दस महीने बड़ा और दाऊदादासे डेढ़ महीने छोटा है। कन्हाईके मुख्य सखाओंमें सबसे बड़ा तो मधुमङ्गल है; किन्तु वह तो ब्राह्मण है। वह गोचारण तो करता नहीं, वनमें साथ खेलने आता है। दाऊदादा सबसे बड़ा है। विशाल, अर्जुन, ऋषभ, वरूथप और श्रीदास भी भद्रसे बड़े और दाऊदादासे छोटे हैं। इनमें बड़ाई-छोटाई केवल कुछ दिनोंकी है। अंशु, देवप्रस्थ, तेजस्वी और तोक-

कृष्ण छोटे हैं कन्हाईसे। इनमें भी सबसे छोटा है तोक, जो भद्रका सगा छोटा भाई है और रूप-रंग, वेश-भूषामें कन्हाईकी दूसरी मूर्ति ही है।

गोलोकमें दाऊदादाकी आयु अठारह वर्षकी। कन्हाई दाऊसे लगभग साढ़े ग्यारह महीने और भद्रसे दस महीने छोटा। यही इनकी नित्य आयु है।

भद्र है तो नन्दबाबाके सबसे छोटे भाई नन्दनजीका ज्येष्ठ पुत्र। इसकी माता अतुला है; किन्तु यह नन्दनजीको कन्हाईके समान ही छोटे चाचा कहता है और अपनी जननीको छोटी चाची। तोकको भी चाचाका पुत्र कहता है। इसका कारण है, यह शैशवसे मैया यशोदाके अंकमें ही पला-बढ़ा। उन्हींका स्तनन्धय; किन्तु चलने लगा तबसे ब्रजराज बाबाके साथ सोने लगा। उन्हींके साथ यमुना स्नानका व्यसनी बन गया।

दूसरे सब गोपकुमारोंकी अपेक्षा भद्र कुछ विशिष्ट है। यह आज्ञाके स्वरमें न भी बोले तो निर्णयके स्वरमें बोलता है और अपने निर्णयको नहीं बदलता यदि कन्हाई मचल न पड़े या दाऊदादा इसे कुछ और करनेको न कह दें।

इसके अपने पिता नन्दनजी मल्ल हैं; किन्तु इसे व्यायामके नामसे चिढ़ है। गोपोंमें बड़े-बूढ़े भी नाचते-गाते हैं, पर भद्र न नाचेगा और न गायेगा। मैयाने एक बार पूछ लिया—'तुझे नाचना आता है?'

'हाँ' भद्रने अस्वीकार नहीं किया।

'किसके साथ नाचेगा?' कन्हाई चकित हुआ। इसने कभी भद्रको नाचते देखा नहीं था। दौड़कर हाथ पकड़कर हिलाते पूछा।

'धर्मके साथ।' भद्र हँसकर बोला—'उसे ले आऊँ?'

'तू अपना नाचना रहने दे।' मैयाने हँसकर रोक दिया—'मुझे अपना प्रांगण नहीं खुदवाना और न भाण्ड फुड़वाने।'

ब्रजराज बाबाके गोष्ठका सबसे विशाल, शैल-शिखरके समान उत्तुंग श्वेत महावृषभ धर्म नाचेगा तो कैसा लगेगा, आप कल्पना कर

देखो। प्रलयंकर प्रभु ताण्डव करते होंगे तो सम्भवतः उनका नन्दी भी पूँछ उठाकर कूदता होगा। धर्म उसी प्रकार तो कूद-फाँद करेगा।

'मुझे बजाना भी आता है; किन्तु पीं-पीं करना मुझे नहीं रुचता।' भद्र कह देता है—'लड़कियोंकी भाँति तो कन्हाई नाचता है और शृंग भी बजाये तो वैसे ही कोमल स्वरमें बजाता है।'

व्रजराज बाबाका बड़ा शंख भद्र बचपनमें भी बजा लेता है। शंख उसका प्रियवाद्य है और उसके अतिरिक्त कुछ बजाना ही हो तो वह भेरी पीटना चाहेगा अथवा लट्ठ खटाखट करेगा। भद्र तो नन्दन चाचाका भारी लट्ठ भी घुमा लेता है। गोचारणमें यह लाठी ही ले जाता है। कन्हाईके वेत्र-लकुटको तो दो अंगुलीसे नचाकर दूर फेंक देता है।

कन्हाई वंशी बजावे या गावे तो यह नेत्र बन्द करके किसी मुनिके समान बैठ जाना चाहेगा, यदि कन्हाई इसके कन्धेपर ही भुजा रखे न हो। कन्हाईको भी इसके या सुबलके कन्धेपर, विशेषतः दाहिने कन्धेपर वाम भुजा रखकर खड़े होने अथवा चलनेका स्वभाव है।

दाऊदादा केवल दाहिने कर्णमें कुंडल पहिनता है। कन्हाई कभी उसके दाहिने कन्धेपर सिर नहीं रखता। बड़े भाईके बायें कन्धेपर सिर रखेगा अथवा कण्ठमें भुजायें डालेगा; किन्तु भद्रको यह सुविधा नहीं है। कन्हाईका कोई ठिकाना नहीं है। वह दौड़ते-दौड़ते ही प्रायः आता है। कभी पीछेसे, कभी आगेसे, कभी दाहिने और कभी बायें और लिपटेगा, हिलेगा, सिर हिलावेगा। साधारण बात भी कानमें कहना चाहेगा। चाहे जब अपने कुण्डल भद्रकी अलकोंमें उलझा देगा या भद्रके कुण्डलमें अपनी अलकें उलझा लेगा। यह करके भी ताली बजाकर हँसेगा। भद्रको ही किसी प्रकार अलकें सुलझानी पड़ती हैं।

भद्रने तो चाहा था कि कुण्डल पहिनना ही छोड़ दे; किन्तु मैयाको मना भी ले तो कन्हाई मानेगा? यह तो वैसे भी कई बार भद्रके कुण्डल अपने कानोंमें डालता है और भद्रको अपने कुण्डल पहिनाता है। दोनोंकी मालामें परिवर्तन होना तो साधारण बात है।

कन्हाई चाहे जब, चाहे जहाँ अपना पटुका रखकर भूल जायगा और भद्रका पटुका अपने कन्धेपर रखकर मटकेगा—'यह मेरा है।'

'तेरा पटुका तो पीला है।' कोई सखा कह देगा।

'तो क्या हुआ ? यह मेरे दादाका है ?' कन्हाईके पटुके, शृंग, वेत्र और छीकेकी भी खोज-खबर भद्रको रखनी पड़ती है। भले वह दूरसे दिखा दे और कन्हाई स्वयं दौड़कर उठा लावे। कन्हाई तो भद्र या किसी सखाके कन्धेपर अपना पटुका भी रख देगा—'तू इसे भी लिए रह।'

भद्रको लाठी अच्छी चलानी आती है, यह सब सखा मानते हैं; किन्तु कन्हाई तो लाठी सीखना ही नहीं चाहता। इसके सुकुमार कर वेत्र-लकुट भी घुमानेमें थक जाते होंगे।

गायें चरानेका काम तो वरूथप, अर्जुन, ऋषभ अपने यूथके सखाओंके साथ करते हैं। भद्रको कन्हाईसे ही अवकाश नहीं मिलता। यह कभी कमल या पाटल पुष्प लेने दौड़ेगा। कण्टक वीरुधोंके पुष्प इसे कैसे तोड़ने दिये जा सकते हैं। यह तो देखकर पादक्षेप भी नहीं करता। कभी कपिके पीछे उसकी पूँछ पकड़े वृक्षपर चढ़ने लगेगा। इस अत्यन्त चञ्चलको सम्हालना सरल काम नहीं है।

कन्हाई किसी सखाको चिढ़ा दे सकता है। श्रीदामको खिझाता ही रहता है और जिसके दाव न देकर अंगूठा दिखावेगा, वह इससे झगड़ेगा नहीं ? भद्रको ही ऐसे झगड़े निबटाने पड़ते हैं। भद्र इसके बदले दाव देनेको प्रस्तुत ही रहता है; किन्तु भद्रसे सखा दाव लेते कहाँ हैं।

'तू इस कन्हाईको तो डाँटता नहीं।' सखा भद्रसे यही तो कह सकते हैं।

'तू दादाके पास जा।' भद्र कन्हाईको भेजे दादाके पास या सखाको, एकको तो भेजना ही पड़ता है। दाऊदादा भी किसी सखाको डाँटता नहीं। जो उसके पास जायगा, उसीको स्नेहसे साथ सटाकर बैठा लेगा। उसीको कह देगा—'तू यहीं बैठ !'

'तू गायोंको बुला !' सायंकाल अथवा दूसरे समय भी जब गायें दूर हों और उन्हें विशेष दिशामें ले जानेको, पानी पिलानेको अथवा घर लौटानेको बुलाना हो तो भद्र कन्हाईके करोंमें उसका शृंग दे तो देता है; किन्तु तत्काल दूसरे कई सखाओंको पुकार लेता है। गायें कन्हाईके बुलाते

ही दौड़ तो आवेंगी; किन्तु उसे घेर लेंगी। सुकुमार कन्हाई कितनोंको सहलावेगा। सब इसे हैरान कर लेंगी। अतः शीघ्र उनको दूर हटाकर हाँककर कन्हाईको उनके झुण्डसे निकालना भी तो पड़ेगा।

कन्हाई नृत्य करे या गावे तो भद्र ताली बजावेगा। विशाल कहीं थोड़ी दूर भी चला जाय तो भद्र उसे पास बुला लेता है; क्योंकि कन्हाईको चाहे जब कोई पुष्प या फल लेनेकी धुन चढ़ेगी और तब यह विशालके कन्धोंपर बैठने दौड़ेगा। फूल या फल तोड़ना इसे अपने हाथसे ही रहता है। इसमें विशालके बिना कैसे काम चले।

कन्हाई कब क्या चाहेगा, इसका कुछ ठिकाना नहीं रहता। यह तो कभी यह भी हठ कर सकता है कि गिरे फल या टूटे पुष्पको उसकी टहनीसे लगा दिया जाय। यह सुननेको ही तैयार नहीं होगा कि यह नहीं हो सकता।

'तू कर सकता है। तू इसे कर, झटपट कर, अभी पहिले कर दे।' यह झगड़ने ही लगेगा।

ऐसी अवस्थामें भद्रको ही युक्ति करनी पड़ती है। भद्र कोई न कोई युक्ति लगा ही लेता है। पुष्पको टहनीपर काँटेसे उलझा दे सकता है। फलको डालपर किसी प्रकार रख आ सकता है अथवा कन्हाईको समझा दे सकता है—'यह शशक तेरे पास यह फल माँगने ही तो आया है। तू इसे नहीं देगा तो यह अभी तुझसे झगड़ेगा। यह भूखा है, फल इसे दे दे। यह खायगा।'

कन्हाई तो भोला है। शशकसे ही पूछेगा—'तू भूखा है? फल खायगा?'

'यह वृक्षपर तो चढ़ नहीं पाता।' भद्र ऐसा कुछ कह देगा और कन्हाई अपने हाथसे फल दे तो उसे कपि भी अस्वीकार नहीं करेगा। शशक वहीं दोनों अगले पैरोंमें फल पकड़कर जब खाने बैठ जायगा, कन्हाई प्रसन्न होकर उसे देखता रहेगा। उसे दूसरा फल या मोदक देना चाहेगा।

'यह छोटा-सा तो है।' भद्रको रोकना भी आता है—'इसका छोटा-सा पेट है। तू इसे अधिक खिलावेगा तो यह रुग्ण हो जायगा।'

भद्रको सब सखाओंको सम्हालना रहता है। सब पशुओंका ध्यान रखना रहता है; किन्तु सबसे अधिक कन्हाईको सम्हालना आवश्यक है। यही सबसे चपल है और सबसे दुर्बल तथा सुकुमार भी है।

'तू थक गया है। मैंने पल्लव-तल्प बनायी है।' कन्हाईको यह धुन भी चढ़ती है। उसने पल्लव-तल्प बनायी है तो किसी सखाको थकना भी चाहिए। यह किसीका भी हाथ पकड़ेगा—'तू उसपर लेट, मैं तेरा पाद-संवाहन करूँगा।'

कन्हाईके कोमल-कर पाद-संवाहन करने योग्य हैं? इसे तो कमलपत्रसे व्यजन भी करने दो तो इसकी भुजायें पीड़ा करेंगी। लेकिन यह अपनी हठ ऐसे कहाँ छोड़नेवाला है। भद्रका कर पकड़े या और किसी सखाका, समस्या भद्रको ही सुलझानी पड़ेगी। जिसका कर पकड़ेगा, वही पुकारेगा—'भद्र! इसे समझा तो कि कौन थका है? यह मेरे पीछे पड़ा है और मानता नहीं।'

'हाँ थका तो है; किन्तु तू भूल गया कि दाऊदादा थका है।' कन्हाई यह बात सरलतासे मान लेगा। उसे यह भी स्वीकार है कि यह तल्प दादाके लिए बना रहा था, अब भूल गया है। दाऊदादा बैठा रहता है, अतः बैठे-बैठे थक गया होगा। सखा तो दौड़ते-कूदते, गायें घेरते रहते हैं, वे भला क्यों थकेंगे। ऐसी युक्ति कन्हाईको ही ठीक लग सकती है और अब दाऊदादाका मना करना कोई सुनेगा?

'तू भी थक गया है।' दाऊदादा हाथ पकड़कर कन्हाईको अपने पास लिटा लें तो यह अस्वीकार नहीं कर पाता।

'तू पल्लव-तल्प नहीं बनावेगा? कन्हाई थक गया लगता है।' भद्र जानता है कि तोक या तेजस्वी अथवा दोनों मिलकर तल्प बनावें तो कन्हाई इन छोटे भाइयोंकी बात टाल नहीं पाता। अंशु या देवप्रस्थ भी हठ करें तो कन्हाईको मानना पड़ता है कि वह थक गया है और तल्पपर उसे विश्राम करना चाहिए।

कन्हाई सुबल या श्रीदामके अंकमें सिर रखकर लेटेगा और तब उनमें-से एक और भद्र उसके कर अपने अंकमें ले लेंगे। भद्र कह देगा—

'तेरे कर स्वतन्त्र रहेंगे तो कुछ करता रहेगा। दूसरा कुछ न करे तो अंगुलियाँ नचाता र्‌गा। नेत्र बन्द करके विश्राम कर !'

भद्र दाहिने करका सम्बाहन करेगा। तोक और अंशु व्यजन करेंगे। विशाल और अर्जुन पाद-संवाहन करेंगे और देवप्रस्थ तेजस्वीके साथ कुछ धीरे-धीरे गुन-गुनायेगा। सखा सब कोई न कोई सेवा करना चाहते हैं कन्हाईकी और ऐसी सेवा तो भद्र प्रसन्न हो तो मिले।

गोचारणकी वन-क्रीड़ा तो जैसे भद्रकी है। भद्र कहे सो करना है सखाओंको और कन्हाई भी भद्रकी बात मान ही लेता है, भले कभी नट-खटपनसे आनाकानी करके माने। दाऊदादा तो सभी सखाओंकी बात मान लेता है। एकने कहा—'पूर्व चलो !'

'चलो !' दाऊ अपना लकुट लिए उद्यत।

'नहीं, आज पश्चिम चलो।' दूसरेने कह दिया।

'पश्चिम चलो !' दाऊदादा उसीका बात मान लेगा।

गोपोंमें दो मत नहीं हुआ करते, यह अपने बड़ोंसे गोपकुमार प्रायः सुनते हैं। अतः ऐसा मतभेद होते ही सब कह देंगे—'भद्रसे पूछो।'

'तू किधर चलेगा ?' भद्र कन्हाईसे पूछेगा और कन्हाई यदि भद्रपर छोड़ दे—'जिधर तू चलेगा' तो भद्र प्रायः आयुमें जो सखा छोटा होगा, उसकी बात मान लेगा। बड़े सखाकी बात तो तब मानेगा, जब वह कोई बड़ा कारण बतलावे।

'उधर बहुत काँटे हैं।' यह कारण बड़ा कारण है। कण्टकाकीर्ण वनकी ओर कन्हाईको नहीं जाने दिया जा सकता।

'उधर कोई दुर्मद केहरी या कपि है।' ऐसा कारण तो भद्रको उत्तेजित करेगा उधर जानेको। वृन्दावनमें आस-पास कोई ऐसा दुर्मद-प्राणी क्यों रहना चाहिए कि सखा उससे आतंकित हों। कन्हाई ही कूदेगा—'मैं उसे देखूंगा।'

'मेरा लकुट उसे सीधा कर देगा।' भद्र दूसरा कुछ कह नहीं सकता और सत्य तो यह है कि कोई केहरी, कपि कहीं ऐसा नहीं मिलता जो

कन्हाईको देखते ही इसके चरणोंमें लेटनेको उत्सुक न हो उठे। भद्र ऐसोंको तो धमका भी नहीं सकता। केवल उन्हें पुचकार और थपथपा सकता है।

भद्रका अनुशासन वन तक। घरमें अनुशासन मैयाका, बाबाका, माँ रोहिणीका। वैसे गोलोकमें भद्रका अपना अन्तःपुर भी है; किन्तु वह तो कन्हाईकी भाभियोंका अन्तःपुर है। वहाँ धूम-धाम कन्हाईकी और व्यवस्था उसकी भाभियोंकी। भद्र वहाँ रहता है, केवल इतना ही कह सकते हैं। कभी कन्हाई किसी भाभीसे उलझ पड़े और वह भद्रकी ओर देखे भी तो भद्र कह देगा—'तुम भाभी-देवरके मध्य मैं नहीं पड़ता।'

कन्हाई ही ऐसा नटखट है कि वह कभी किसी भाभीको खींचकर और छोटीको तो भुजाओंमें भरकर उठाकर लाकर कहने लगता है—'इस भाभीको ले! पकड़ इसे।'

यह आनन्दघन कन्हाई। यह किसीको ले आवे तो उसे अस्वीकार किया नहीं जा सकता। उसका कर पकड़ो और यह नाचेगा, ताली बजावेगा, कूदेगा। इस चिद्घन लोकमें मर्त्यधराके समान अंग-संग तो है नहीं। केवल स्पर्श जैसे दो शरीरोंको एक कर देता है और इसमें कोई कन्हाईकी भाभी लज्जारुणा होती है तो हो। यहाँ तो जीवन ही कन्हाईको उल्लसित करनेके लिए है।

अवश्य भद्रको बाबा, मैया और माँ भी बहुत स्नेह देते हैं। भद्रकी बात इनमें कोई नहीं टालता और दाऊदादा तो किसी सखाकी बात नहीं टालता।

'तू इसे बुला, तू इसे समझा, तू इससे कह।' वन हो या घर, कन्हाई भद्रसे किसी पशु-पक्षीसे कुछ भी करने या कहनेको कह सकता है। कोई बिल्ली इसके अंकमें आ बैठे या कोई बछड़ा इसे सूंघकर सिरसे ठेलने लगे तो यह भद्रको पुकारने लग सकता है।

'मेरी बात यह नहीं समझेगा।' भद्र यह कहकर भी जानता है कि कन्हाई यह बात सुनेगा ही नहीं। वह उलटे मचलेगा—'तू इसे समझा—तू समझा सकता है।'

पशु-पक्षी भी कन्हाईके समान भद्रकी बात समझते हैं और भद्र उन्हें पुचकार कर कुछ कहता है तो इसकी बात मान लेते हैं। भद्र ही तो कन्हाईसे कह सकता है—'बछड़ा तुझसे झगड़ने आया है। तूने इसे आज सहलाया क्यों नहीं ?'

कन्हाईका काम तो भद्रके बिना एक घड़ी नहीं चल सकता। अतः यह भद्रके आस-पास ही वनमें और घरमें भी बना रहता है। सोवेगा भी तो भद्रके साथ, न सोवे तो शैय्या अवश्य भद्रकी शैय्यासे सटा लेगा।

व्रजराज बाबा—

अपने समान बाबा स्वयं ही हैं। अपने पद और ऐश्वर्यको उन्होंने कभी जैसे जाना ही नहीं। उन्होंने तो व्रजराज पदका सम्भवतः अर्थ ही यह जाना कि व्रजमें सबका आज्ञाकारी सेवक। अतिशय विनीत और सौम्यता तथा वात्सल्यकी कोई मूर्ति बनानी हो तो पुरुष मूर्ति बाबाकी बनेगी और नारी मूर्ति मैया व्रजेश्वरीकी बनेगी।

किञ्चित् गेहुँआं गौर वर्ण, कुछ स्थूलताकी ओर झुकता शरीर, विशाल भाल, तनिक अरुणाभ दीर्घ दृग। विशाल वक्ष तक लटकती सघन दाढ़ी जिसमें कुछ केश काले भी हैं। मस्तकके श्वेत-कृष्णकेश कुछ घुंघरालेसे, कण्ठमें तुलसिकामाल, भालपर अरुण उर्ध्वपुण्ड तिलक, छोटी-सी तोंद, गम्भीर नाभि।

बाबाका पूरा शरीर कुछ सघन रोमोंसे भरा है। ठीक गैरिक तो नहीं; किन्तु उससे लगभग मिलते रंगकी धोती और उत्तरीय बाबा धारण करते हैं। मस्तकपर श्वेत पगड़ी तो पहिनते हैं; किन्तु उसपर व्रजराज-पदकी सूचक रत्न कलँगी किसी विशेष उत्सवके दिन कोई गोप प्रमुख या भाई हठ करके धारण करा दें तभी लग पाती है।

'इसे रहने दो।' बाबा प्रायः कलँगीके लिए कह देते हैं—'इसे नीलमणि तनिक बड़ा और समझदार हो जाय तो उसे पहिना देना।'

'नीलमणि तो मयूरपिच्छ लगाकर ही महाराज राजेश्वर है।' गोप कहते हैं—'उसे किसी दूसरे मुकुट या कलँगीकी आवश्यकता ही नहीं है। वह तो जन्मसे हम सबके हृदयका शासक है।'

यह सब बाबा स्वीकार कर लेंगे; किन्तु उन्हें अपना नीलमणि बहुत छोटा, दूध पीता शिशु लगता है और भोला तो इतना है कि दूध दुहने छोटी बछड़ीके पास भी जा बैठता है। अभी तो वह बाबाके अंकमें बैठ कर उनकी श्मश्रुमें अथवा नाभिमें अंगुली नचाता है अथवा उनकी तोंदपर

अपना नन्हा मुख लगाकर फूंक मारकर 'भड़ाम' शब्द करके ताली बजाकर किलकता है।

गोप कहते हैं कि 'व्रजराज तब साठ वर्षके थे जब कन्हाई हुआ था।' बड़े गोप क्या जागते-जागते भी स्वप्न देखते हैं? कन्हाई भला क्या हुआ होगा? यह अच्छा चपल तो अब है ही। कुछ भी होगा तो और क्या होगा? भद्र कन्हाईसे कहता है—'कुछ भी रहा हो, तू मुझसे छोटा रहा होगा। मैयासे पूछ देख।'

बाबा बूढ़ा तो है नहीं। केश सिर या श्मश्रुके कुछ श्वेत हो जायँ तो कोई बूढ़ा हो जाता है? बूढ़े तो बड़े ताऊ (उपनन्दजी) भी नहीं लगते। बाबा तो गायोंकी देखभाल करता है। अपने ही नहीं, सब गोपोंके गोष्ठ घूम आता है। सब गोपोंकी खोज-खबर लेता है। बाबाको अपने नारायणकी पूजाको छोड़कर बैठना भी मिलता है तो गोप उसे घेरे रहते हैं और पता नहीं क्या-क्या ऋषि-मुनियोंकी बात किया करते हैं।

बाबाको पता नहीं कितनी पूजा करनी रहती है। नारायणकी पूजा, गायोंकी पूजा, वृषभोंकी पूजा, ब्रह्मर्षि शाण्डिल्य और उनके साथियों, शिष्योंकी पूजा। बाबा तो मधुमङ्गलको भी प्रणाम करके उसकी भी पूजा करता है और मधुमङ्गल भी बड़ा भारी पंडित बनकर कुछ बड़बड़ाने लगता है।

कन्हाई ठीक तो कहता है—'बाबा, यह मधुमङ्गल पोंगा पंडित है। इसे तिलक भले गोबरका कर दो; किन्तु भोजनको मोदक चाहिए।'

'तुम अभी छोटे यजमान हो।' मधुमङ्गल गम्भीर मुख बना कर कहेगा—'बड़े हो जाओ तो समझ जाओगे कि गोमय परम पवित्र होता है।'

बाबाको हम बालकोंकी बातोंका उत्तर देनेका अवकाश कहाँ। कोई गोप या सेवक उनके पास कुछ कहने न भी आवे तो उन्हें स्वयं किसीके गोष्ठमें या किसी ऋषि-महर्षिके पास जाना लगा रहता है। वह तो सायंकाल हम सब बालक बाबाको पकड़ लेते हैं। फिर उन्हें उनकी विशाल काष्ठ-शैय्यापर लिटा लेते हैं। बाबा तो बालकोंकी बात भी मान ही लेते हैं। दाऊदादा उनकी दाहिनी भुजासे सटकर बैठ जायगा और कन्हाईके साथ

सब बालक उनपर लद जायँगे या सटकर बैठ जायँगे। बाबा बैठे हों तो उनके अंकमें, कन्धेपर बैठने या पीठ अथवा भुजासे लिपटनेका स्वत्व सब बालकोंका। फिर बाबाके केशोंमें पुष्प लगाओ या उनके श्मश्रुमें।

बाबाको पता नहीं कितनी कथाएँ आती हैं। गायोंकी कथा, वृषभकी कथा, देवी-देवताओंकी कथा, ऋषि-मुनियोंकी कथा और सिंह, भल्लूक अथवा कपिकी भी कथा। बाबाको इतनी कथाएँ किसने बताई होंगी ? कन्हाई या तोक, भद्र या तेजस्वी जो, जिसकी कथा पूछता है—बाबा वही कथा सुनाने लगता है।

दाऊदादा कोई कथा नहीं पूछता। वह बाबाकी भुजासे सटा बैठा या लेटा सुनता रहता है। सबसे अधिक कन्हाई ही पूछता और पूछते तो बाबा भी हैं। बाबा कभी कन्हाईसे पूछते हैं—'तुमको वनमें भल्लूक मिला ?'

'वह तो भलभलाता रहता है और खड़े होकर नाचता है।' कन्हाई बोलने लगेगा तो बोलता ही जायगा—'हममें कोई उसकी पीठपर बैठ जाय तो जहाँ कहो ले जाता है।'

'वन-पशुकी पीठपर नहीं बैठते।' बाबा जानते हैं कि मना करनेसे तो कन्हाई मानेगा नहीं। अत; कहते हैं—'वनपशु कम ही स्नान करते हैं। उनका शरीर अस्वच्छ रहता है। भल्लूकके केशोंमें छोटे कीट हो सकते हैं।'

'बाबा, शशक और गिलहरी स्वच्छ होती हैं।' अंशु या देवप्रस्थ अथवा कोई बोल पड़ेगा—'केहरी, मृग भी स्वच्छ होते हैं और कपि तो कूद-कूदकर स्नान करते हैं।'

'नीलमणिने वनमें आज क्या किया ?' बाबाको यह प्रतिदिन पूछना रहता है। यह विवरण अनेक बालक साथ देने लगेंगे और कन्हाई अनेक बार प्रतिवाद करेगा, थोड़ा झगड़ेगा भी।

बाबाको दाऊ या भद्रसे अवश्य पूछ लेना रहता है। वृक्षपर चढ़ने, यमुना या ह्रदमें स्नान करनेकी बात कोई कहे तो कन्हाई तत्काल कहेगा—'दाऊदादा और भद्रके साथ मैं गया था। दोनों मेरे साथ थे।'

पता नहीं बड़े लोगोंको इतनी चिन्ता क्यों रहती है। बाबा ही ढेर सारे उपदेश प्रतिदिन देते हैं—'ऊँचे पेड़पर नहीं चढ़ते। पतली शाखापर नहीं जाते। जलमें किनारे ही स्नान करते हैं। कमल या पाटलपुष्प मत तोड़ा करो, उनमें कांटे होते हैं। बहुत दौड़ा मत करो। धूपमें मत खेला करो………………।'

बाबाके पूरे उपदेश सुननेको रुको तो वे मुनियोंसे सुनी सब बातें सुनावेंगे और गायें वनमें ही नहीं जा पावेंगी।

ऋषि-मुनि समझते हैं कि गोप उनकी बातें भूल जाते हैं। इसलिए वे बार-बार उपदेश करते हैं। बड़े गोप समझते हैं कि बालक उनकी बातें भूल जाते हैं, इसलिए उन्हें अवसर मिले तो दिनमें कई-कई बार वही बातें बतलाते हैं।

इतना तो मैं भी बाबाको बता सकता हूँ—'बाबा, धूपमें मत जाया करो और वर्षामें भी मत निकलो, किन्तु मैया कहती है—'बड़ोंको उपदेश नहीं देते। उनकी बात चुपचाप सुन लेते हैं।'

कन्हाई मैयासे कभी-कभी ठीक झगड़ता है—'तू तो इतनी बड़ी है। तू बाबाको क्यों नहीं डांटती या मना करती कि वह धूपमें निकलकर क्यों जाता है।'

लेकिन कन्हाई तो भोला है। भला मैया बाबाको कैसे डांटेगी? लेकिन कन्हाई तो जानता ही नहीं कि मैया बछड़े या श्वानको भी डांट नहीं सकती और डांटे भी तो वे क्या मैयाका उपदेश मानेंगे? कन्हाई तो मैयासे या बाबासे चाहे जब झगड़ लेता है—'बाबा! तुम इस गौरव (बछड़े) को तो डांटते नहीं। देखो, यह गोबरके ऊपर ही बैठा है।'

'वह तो बछड़ा है' बाबाकी यह बात कन्हाई नहीं समझ पाता—'बछड़ा है तो क्या हो गया? वनमें बड़ी उछल कूद करता है। धूपमें दौड़ता है। वर्षामें तो और भी दौड़ता है। स्नान कराने ले जाओ तो जलसे बाहर निकलकर भागता है। मुझे भिगो देता है।'

कन्हाई किसीके दोष गिनाने लगे तो ढेरों गिना देगा और फिर स्वयं उसके पास मनाने पहुँच जायगा। बाबा गौरवको झूठमूठ भी डांटे या

मना करें, इससे पहिले कन्हाई ही जाकर गौरवका मुख दोनों करोंमें लेकर पुचकारेगा—'तू मेरी बात नहीं मानेगा तो मैं भद्रको, दाऊदादाको और मैयाको भी कह दूंगा।'

बाबा मुग्ध अपने नीलमणिको देखते रहेंगे। यह नन्हा यह भी नहीं समझता कि पशु इसकी धमकी क्या समझेगा। गौरव तो यह समीप आ जाय तो इसे सूंघेगा या इसके अंकमें मुख रखकर नेत्र बन्द कर लेगा।

बाबाके स्वच्छ शरीर और वस्त्र हम बालक अपने शरीरोंमें लगी धूलि या गोबरसे तो मलिन करते ही रहते हैं, बछड़े, गायें भी चाहे जब उनके शरीर या वस्त्रसे मुख सटा देती हैं। गोमय लगा देती हैं अथवा गीली पूंछ छिड़क देती हैं। बाबा तो इससे उलटे प्रसन्न होते हैं, जैसे ऋषियों द्वारा कुशोंसे जल छिड़कनेसे होते हैं। गोबर या गोमूत्रमें वस्त्र भींग जाय तो बाबा उसे स्वयं परिवर्तित भी न करें, यदि मैया ही परिवर्तित न करा दे।

गोपोंमें कोई उपानह नहीं पहिनता। गोलोकमें उपानहकी सत्ता ही नहीं है। महर्षिगण और बड़े गोप पूजाके समय अथवा भोजनको जाते समय पादुका पहिनते हैं। कन्हाई और हम सब भी इन पादुकाओंको थोड़ी देरको विनोदसे भले पहिन लें; किन्तु ये तो दौड़नेमें बाधा देती हैं।

गायें देवता हैं, पूज्य हैं। गोपों और गोप-बालकोंको उनके साथ, उनके पीछे रहना है। गायोंको तो कोई उपानह पहिनाता नहीं, तब गोप कैसे उपानह पहिनेंगे।

'भद्र तो मुनियोंके समान पादुका पहिनकर खटाखट करता चलता है।' कन्हाईने बाबासे कहा तो बाबाने भद्रको डांटा नहीं, उलटे उसकी पीठ सहलाने लगे। बाबा तो किसीको भी नहीं डांटते।

'बाबा, इस धर्मको मना कर दो।' भद्रने बाबासे कहा—'यह वनमें ऊँचे टीलेमें सिर लगाकर उसे खोदने लगता है और अपना सिर मिट्टीसे भर लेता है। गर्जना करके बछड़ों और वृषभोंको डरा देता है। दाऊदादा तो चुपचाप बैठा रहता है। मैं कन्हाईके साथ तनिक दूर होऊँ तो यह वरूथपके धमकाने और लकुट उठानेको भी नहीं सुनता।'

बाबाने तो सुनकर भी धर्मको धमकाया नहीं। धर्मके दोनों पिछले चरण छूकर उस उत्तुंग वृषभकी परिक्रमा की और उसके सामने हाथ जोड़कर बोले—'आप धर्म हो, आपको उग्र नहीं होना चाहिए। हम सेवकोंपर सुप्रसन्न बने रहिये।'

भद्रको बहुत आनन्द आया। वह ताली बजाता दौड़ता कूदता मैयासे, माँसे, दाऊदादासे और कन्हाईसे भी कह आया—'धर्म तो बाबाका सिर सूँघता था। बाबा कोई छोटा बालक है, सिर तो बालकोंके सूँघे जाते हैं। धर्म इतना भी नहीं जानता।'

'बाबाका सिर तो कामदा, अरुणा, कृष्णा और सब गायें, बछड़े बछड़ियाँ भी सूँघती हैं। गौरव तो बाबाका सिर चाट लेता है।' कन्हाईने मैयासे कहा—'गौरव मेरे बाबाको क्यों जूठा करता है?'

'गौरवके हाथ जो नहीं हैं।' माँ ने कन्हाईको कहा—'वह ऐसे ही अपना स्नेह प्रकट करता है। जैसे तुम गौरवको सहलाते हो।'

माँको और मैयाको तो भद्रको, कन्हाईको गोष्ठमें अब सायंकाले जानेसे रोकना रहता है। ये अभी तो वहाँसे लौटे हैं। अब ब्यारू नहीं करेंगे और विकल जायंगे तो पता नहीं कितनी देरमें लौटें। घरसे निकलनेपर इनका क्या ठिकाना कि कहाँ खेलने निकल जायें।

'अभी तुम छोटे हो।' बस यही बात बाबाकी भद्रको और कन्हाईको भी रुचती नहीं है।

'मैं इतना तो बड़ा हो गया।' कन्हाई कई बार झगड़ पड़ता है—'भद्र भी बड़ा है, दाऊदादा भी, ऋषभ भी, अर्जुन भी………।

बाबा नहीं बोलें बीचमें तो कन्हाई पता नहीं कितने सखाओंके नाम गिना डाले; किन्तु बाबा कह देते हैं—'तुम सब बड़े हो गये हो तो अब अपनी चौपालमें बड़ोंके साथ बैठो। उनकी उत्तम बातें सुनो।'

'वहाँ तो बूढ़े लोग बैठते हैं।' कन्हाई मुख बना लेता है—'मैं कोई बूढ़े होने जितना बड़ा हुआ हूँ।'

इतना बड़ा तो भद्रभी अपनेको नहीं मानता। बूढ़े गोप तो बाबाके

पास बैठकर पता नहीं क्या 'ज्ञान-विज्ञान' की बातें करते हैं। कन्हाई कहता है—'ज्ञान कोई झंखाड़ है।'

भद्रको भी लगता है कि बड़े-बूढ़े गोप कहीं दूर होनेवाली किसी जड़ी-बूटीकी बात करते होंगे। ज्ञान कोई झंखाड़ होगा तो विज्ञान भी तो वैसा ही कुछ होगा। बड़े गोपोंको इन दूरके झाड़-झंखाड़ोंकी चिन्ता अधिक रहती है।

'अपनी गायें उसे चरेंगी ?' भद्रने बाबासे ही पूछा—'कितनी दूर है वह।'

'क्या ?' बाबाने कुछ अकचकाकर पूछा।

'बड़े ताऊजी जो कह रहे थे कल सायं काल ज्ञान। उसके पत्ते कोमल होते हैं ?'

बाबा तो खुलकर हँस पड़े। इसमें हँसनेकी क्या बात है ? पर भद्रको उन्होंने पुचकारा, थपकाया—'तुम बड़े हो जाओ तो जानलोगे, वह गायोंके कामका नहीं है।'

कन्हाई होता तो ढेर सारे प्रश्न करता; किन्तु भद्र तो कुतूहली नहीं है। अपने कामका नहीं, गायोंके कामका नहीं तो अपने कामका नहीं ही है। फिर वह कोई जड़ी हो या कोई पत्थर या कीड़ा, भद्रको उसका क्या करना। कन्हाई झंखाड़ कहता है तो कोई व्यर्थ झंखाड़ ही होगा।

बाबाको तो बड़े गोपोंसे बहुत चर्चा करनी रहती है। गायोंकी, कोई गोपोंकी चर्चा हो तो भद्र समझ लेता है। दूध, दही, नवनीत, घृत ही नहीं, गोबर, गोमूत्रकी बात भी समझ लेता है। वस्त्र, आभूषण, लकुट, शृंग, वंशी, छीके तो उसके कामकी वस्तुयें हैं; लेकिन बाबा गोपोंसे पता नहीं क्या-क्या बातें करने लगते हैं। कल किसी योगीकी बात कर रहे थे।

भद्र ऋषि-मुनि तो जानता है। अपने महर्षि शाण्डिल्यके आश्रमके पास बहुत ऋषि-मुनि हैं। बाबासे उसने पूछा—'बाबा ! योगी कौन होते हैं ?'

'जो योग करते हैं ?' बाबाको गायोंकी पूजा करनी थी। उन्होंने थोड़े शब्द सुना दिये।

'योग कैसे किया जाता है ?' भद्रने कन्हाईसे वनमें पूछा।

कन्हाई कोई बात सीधे तो बतलाता नहीं, बोला—'तुझे योग करना है ? बैठ झटपट।'

भद्र बैठ गया तो कन्हाई बोला—'नाक पकड़ ! दबा दोनों नाक और दबाये रह, छोड़ना नहीं।'

भद्र झल्ला गया। कन्हाई बोला—'छोटे चाचा अपनी मल्लशालामें दण्ड-बैठक करते हैं। ऋषभ और देवप्रस्थ मयूर, वृश्चिक, हंस जैसे बनते हैं। यह सब मिलाकर और नाक दबाकर ही तो योग होता है।'

'हूँ' तो यह भी एक व्यायाम है।' भद्रका कुतूहल जो थोड़ा था, शान्त हो गया। उसे व्यायामसे चिढ़ है। ऊपरसे मधुमङ्गल कहता है कि 'नेत्र बन्द किये रहो।' नेत्र बन्द करके बैठना क्या ? नेत्र बन्द करना हो तो पैर फैलाकर सो जाओ। नहीं तो नेत्र खोलकर इस कन्हाईको देखते रहो।

बड़े गोपोंकी मण्डली भी व्रजराज बाबाके पास बैठी हो तो दाऊदादा भले चुपचाप बैठा रहे, भद्र, कन्हाई अथवा और बालक पहुँचेंगे तो ये चुप बैठेंगे ? ये तो अपनी बातें करेंगे, अपने ढंगकी धूम करेंगे अथवा बाबासे, ताऊ-चाचासे अपने जाननेकी बातें पूछेंगे। कथा सुनेंगे।

बाबा कभी-कभी किसी महोत्सवके समय कञ्चुक पहिनते हैं। पगड़ीपर कलँगी लगाकर आभूषण धारण करके बड़े भव्य लगते हैं। तब सभी गोप कञ्चुक और आभूषण धारण करते हैं। बालकोंको भी सजाया जाता है। कन्हाई कञ्चुक नहीं पहिनता तो कोई बालक क्यों पहिने। भद्र तो कहता है—'कञ्चुकके थैलेमें बड़े गोप ही बन्द होते हैं।'

कञ्चुक, आभूषण आदि पहिनकर बाबा सबको उपहार देते हैं। बालकोंको भी ऐसी धूम-धाम प्रिय है। लेकिन उस दिन गोचारणको जानेको नहीं मिलता। गायों, वृषभों, बछड़ोंको भी वस्त्राभूषणोंसे सजाया जाता है।

बाबा प्रतिदिन ही ऋषि-मुनियोंको गोदान करते हैं; किन्तु कोई ऋषि या मुनि गायें ले तो जाता नहीं, गायें तो उनके यहाँ की भी गोप-बालक ही चराते हैं। उन्हें तो दूध, दधि, नवनीत, घृत भी थोड़ा ही लगता

है। केवल ब्राह्मणोंमें मधुमङ्गल वनमें जाता है; किन्तु उसके तो गायें नहीं हैं। गोदान भी नहीं लेता। वह तो वनमें खेलने जाता है।

'इस मधुमङ्गलको दस गाय दे दो।' भद्रने बाबासे कहा था।

मधुमङ्गल भाग खड़ा हुआ यह कहकर—'उनका गोबर तू उठाया कर। मैं नहीं उठाता।'

बाबा कहते हैं—'सब गायें तो उनकी और उनके सखाओंकी ही हैं।'

मैया व्रजेश्वरी—

अनन्त ब्रह्माण्डोंका ईश्वरेश्वर कहा जाने वाला कन्हाई जिसका अङ्क-धन है, वह मैया तो, ईश्वरी, महेश्वरी कुछ नहीं है। वह तो बस मैया है और किसकी मैया है, यह मत पूछिये, वह तो जो बालक उसे मैया कहे, उसीकी मैया है। उसके अंकमें किसी बालकके लिए स्थानका अभाव नहीं और जो उसके अञ्चलमें मुख छिपाकर दूध पीना चाहे, सबके लिए उसके वक्षका अमृत झरता ही रहता है। लगता है कि मैया शुद्ध वात्सल्यसे बनी है और उसके पयोधरोंका पय अनन्त है।

लोग कहते हैं कि मैया व्रजेश्वर बाबासे दस वर्ष छोटी है। किधर से छोटी है? मैया भी कहीं छोटी होती है। वह बड़ी है, बहुत बड़ी है। सम्भवतः सबसे बड़ी है; किन्तु················हाँ, मैया महर्षि शाण्डिल्यके, भगवती पूर्णमासीके और ताइयोंके पैरोंमें सिर रखती है। माँको जीजी कहती है। लेकिन् मैया तो गायों, वृषभों, बछड़ोंको भी प्रणाम करती है और मधुमङ्गलको भी प्रतिदिन हाथ जोड़कर सिर झुकाती है। सिर झुकानेसे कोई छोटा नहीं होता।

मैंने मधुमङ्गलसे पूछा—'मैया बड़ी है या तू ?'

'मैं ब्राह्मण हूँ।' मधुमङ्गल सीधे कोई बात ही नहीं बतलाता। वह कहने लगा—'ब्राह्मण तो नारायणसे भी बड़ा होता है। मैं कन्हाईसे, तुम सबसे बड़ा हूँ। तू समझदार हो जायगा तब मुझे प्रणाम किया करेगा और················।'

'समझदारीका ठेका तो तूने ही लिया है ?' मुझे थोड़ा रोष आ गया—'मैयासे बड़ा बनेगा तो मैं तुझे पटक लूंगा और तुझे एक भी मोदक नहीं मिलने दूंगा।'

'मैं तुझसे भी छोटा।' मधुमङ्गल तो हाथ जोड़ने लगा—'सखाओंका सेनापति हुआ है तो ब्राह्मणका मोदक मत बन्दकर। मैं तुझे प्रतिदिन आशीर्वाद दूंगा।'

'आशीर्वाद तू कन्हाईको दिया कर।' सचमुच मुझे आशीर्वादका क्या करना है।

'हाँ, मुझे प्रतिदिन आशीर्वाद दिया कर।' कन्हाई ताली बजाकर बोला—'मैं तुझे सब वृषभोंका गोबर दे दिया करूँगा।'

'तुम सब खेलते ही रहोगे या कलेऊ भी करोगे।' मैया पुकारने लगी। मधुमङ्गल दौड़ गया मैयाके पास मोदक लेने। गोबर लेनेकी कोई उत्कण्ठा उसमें नहीं है। वह भला गोबरका क्या करेगा ?

मैयाको तो एक ही उत्सुकता रहती है—खिलानेकी। वह प्रातः-सायं कुछ नहीं देखती। उसे तो कोई बालक दीख जाय तो बस खिलानेकी सूझती है। अनुनय ही करने लगती है—'लाला रे ! नेक तो कुछ खा ले। तू जो कहे सो ही खिलाऊँगी।'

'नीलमणि तो कुछ खाता ही नहीं। उसके सब भाई और सखा एक जैसे हैं।' मैयाको कभी सन्तोष नहीं होता कि कोई बालक भरपेट खाता है। वह कहती है—'सब भूखे रहते हैं। इसीसे तो सबके सब इतने दुबले हैं।'

मैयाके पास भीड़ लगी ही रहनी है। ताई, चाची और दूसरी भी गोपियाँ मैयाके पास जुटी ही रहती हैं। मैया सबका सत्कार करती है। इनके अतिरिक्त मैयाकी पुत्रवधुओंकी कोई गणना नहीं है। कन्हाईके निकुञ्जकी बात छोड़ भी दें तो कन्हाईके सखा क्या थोड़े हैं ? गोपकुमार न ब्रह्मचारी बने और न एक पत्नीव्रती। सबके अन्तःपुरोंमें कई-कई हैं और वे सबकी सब तो मैयाकी पुत्रवधुएँ ही हैं। सबको मैयाकी चरण-वन्दना करने आना है प्रतिदिन।

मैया तो इन सबके भी निहोरे करती रहती है कि ये ही उसके करसे कुछ खा लें। मैया कहती है—'इन बच्चियोंको और भी भूखे रहना प्रिय हो गया है। अभी इनके खेलने-खानेके दिन और सबकी सब कभी व्रत करेंगी, कभी और कुछ। कभी पर्व-उत्सवपर मान-मनौती करनेपर मुख जूठा भी करने बैठेंगी तो छोटे पक्षी जैसे दो दानेका ग्रास टूँगेंगी।

गौरैया जितना खायेंगी। सबकी सब इतनी कृशकाय हैं कि वायुके झोंकेसे उड़ जायें।'

मैया मोटी तो नहीं है। अवश्य मैयाका पाटल-गौर शरीर थोड़ा भरा हुआ है; किन्तु है वह भी पतली हो। लेकिन मैयामें स्फूर्ति, तत्परता पता नहीं कितनी है। उसमें आलस्यका तो नाम नहीं है।

दासियोंका उपालम्भ है कि मैया उन्हें अपनी सेवाका अवसर ही नहीं देती। मैया किसीको भी सेवाका अवसर न दे, उसकी चले तो वही सबकी सेवा करे; किन्तु उसकी अनेक पुत्रवधुएँ बहुत हठी हैं और मैया अपनी इन बच्चियोंकी हठसे विवश हो जाती है। अन्ततः मैया जब उन्हें अंकमें बैठाकर उनकी केश-सज्जा करती है तो वे सब भी क्यों हठ न करें। मैयाके चरणोंमें अलक्तक लगाने, मैयाके कर सज्जित करने मेहँदी लगाकर, मैयाके दीर्घ दृगोंमें कज्जल लगाने या मैयाकी केश-सज्ज, वेणी-ग्रन्थनका उन्हें भी तो स्वत्व है।

पुत्रवधुएँ प्रायः मैयाको देखकर मुस्कराती हैं; क्योंकि कन्हाई या कोई गोपकुमार आ जाय तो मैयाका वक्षावरण टपकते पयोधरोंके कारण आर्द्र हो जाता है। वात्सल्यमयी मैयाको तो अपने सब बालक शिशु ही लगते हैं और उसके भीतर उन्हें खान-पान करनेकी उमंग उमड़ती है। कोई ऐसा अभागा गोप-बालक नहीं, जिसने मैयाके अङ्कका अमृत न पिया हो।

'मैं तुम सबके पुत्रोंकी धाय' मैया गोपियोंसे कहती है—'तुम सबके आशीर्वादसे ही तो नीलमणि आया। वह तुम्हारा ही तो शिशु है।'

'छोरियो, हँसती हो ?' मुस्कराती पुत्रवधुओंको देखकर मैया अनेक बार कह देती है—'अभी तो तुम सब स्वयं मेरे अंकका दूध पीने योग्य हो, मैयाका हृदय कैसा होता है, यह अभी तुमको क्या पता। तुम सबको यह सौभाग्य मिलेगा, थोड़ा धैर्य रखो। कुछ बड़ी तो हो जाओ।'

मैयाके लिए उसके ये पुत्रवधुएँ कभी बड़ी होंगी या उसके पुत्र ही कभी दुधमुहेंसे बड़े हो पावेंगे ?

पुत्रवधुओंको ही नहीं, मैया तो दासियोंको भी बच्चियाँ ही मानती है। उसे तो एक दिन एक वृद्धा-दासीने ही सुना दिया—'व्रजेश्वरी, मैं

तुम्हारी सास जितनी बड़ी हूँ। तुम तो मुझे भी बच्ची मानकर मेरी सेवा करना चाहती हो। मेरा स्वत्व है तुम्हारी सेवा करना।'

'तुम बड़ी तो हो।' मैयाने तो करोंमें आंचल लेकर उसके आगे सिर टेक दिया।—'तभी तो मुझे तुम्हारी सेवा करना चाहिए।'

'और सास बन लो!' दासियोंने उसे बहुत खिझाया—'हम सब अब इन ददिया-सासकी सेवा करेंगी।'

मैयाको लगता ही नहीं कि उसका नीलमणि और उसके सखा रुचि पूर्वक कुछ खाते हैं। 'ये सब बालक वैसे ही कुछ मुखमें नहीं डालते, अब इनकी रुचिका दही-नवनीत नहीं होगा तो ये मुख भी जूठा नहीं करेंगे।'

इस धुनमें मैयाको किसी दूसरेका उष्ण किया दूध, जमाया दही या दधि-मन्थन करके निकाला नवनीत अच्छा नहीं लगा करता। यह सब काम उसे स्वयं करने हैं।

'दाऊको जो दे दो, मुखमें डाल तो लेगा; किन्तु उसे स्वर्ण रोमा पद्मगन्धाका दही प्रिय है।' मैयाको अपने सब पुत्रोंकी रुचिका पता नहीं होगा तो दूसरे किसको पता होगा—'नीलमणि और भद्र पद्मगन्धा कपिलाके दूधको भी कठिनाईसे मुख लगाते हैं। दोनोंको उसीका दधि और नवनीत प्रिय है।'

'पता नहीं क्यों, सब बालक दूधसे बिचकते हैं।' मैया कहती है—'शैशवसे ही नीलमणि बहुत बहलाने-मनानेपर दो घूंट दूध कठिनाईसे पीता था। भद्र भी ऐसा ही है और तोक भी। केवल दाऊ ना-नूं नहीं करता और जब एक बार ना कर देगा, लाख सिर मार लो, पात्रमें मुख नहीं लगावेगा।'

'भद्रके समान नीलमणिको भी तनिक अरुणाभ दही चाहिए और पद्मगन्धाका सद्य-नवनीत हो तो दोनों भले दो ग्रास भात भी खा लेंगे।'

मैयाके लिए पुत्रवधुएँ तो बहुत छोटी बच्चियां हैं। मैया कभी विश्वास नहीं कर पावेगी कि उनमें कोई अच्छा भोजन भी बना लेती

होगी। मैया तो बालकोंको ही नहीं, उन सबको भी अपने सम्मुख खिलाकर सन्तुष्ट हों, यदि वे भरपेट खा लें; किन्तु बालकोंको खेलनेके पीछे मुख जूठा करके भागनेकी पड़ी रहती है और पुत्रवधुएँ बहुत संकोची हैं। वे सब संकोचसे बहुत अल्प ग्रास किसी प्रकार मुखमें डालती हैं। मैया अनेक बार उनमें कइयोंको अपने अंकमें बैठाकर अपने हाथसे ही खिलाना चाहती है; किन्तु इससे तो उनको और संकोच होता लगता है।

'मैया ! मैया री ! ओरी मैया !' कन्हाई पुकारने लगेगा तो पुकारता ही जायगा।

'क्या हुआ ? तेरी कोई गैया खो गई है ?' यह गोपी बीचमें बोल पड़ी। यह इतना भी नहीं जानती कि गैया यहाँ घरमें कहाँसे खो जायगी।

'तू खो गयी है।' कन्हाई झल्लाये नहीं तो क्या करे।

'मैं तो यहाँ तेरे आगे खड़ी हूँ।' गोपी हँस रही है—'मैं कैसे खोऊँगी ?'

'तेरी लाली खो गई है।' यह गोपी नहीं खो सकती तो और कोई खोया होगा। सचमुच इतनी बड़ी गोपी कोई सुई है जो खो जायगी।

'लाली खो गई है तो तू ढूंढ़ ला उसे।' गोपी तो हँस ही रही है—'तू उसका भैया है या नहीं।'

कन्हाई कैसे अस्वीकार कर दे कि यह उसकी लालीका भैया नहीं है। नहीं, बुरी बात है, लाली तो नहीं ही खोनी चाहिए और यह गोपी उलझ रही है। सकारण उलझी है यहाँ कन्हाई मैयाको पुकार रहा था। मैया दधि-मन्थन कर रही थी। वह अभी ही नवनीत निकाल रही है। ऊपर आ गया नवनीत मटकेमें पड़ा नहीं रहना चाहिए। गोपी चाहती है कि कन्हाई कुछ क्षण उलझा रहे तो मैया माखन निकाल ले।

'तू मल्लू है।' कन्हाई झल्लाया है। न यह गोपी खो सकती और न इसकी लालीको खोने दिया जा सकता। वह तो बहिन है, तब इसको कुछ तो कहना पड़ेगा।

कोई ऋषि होता तो नटखट कन्हाईको कहता—'श्रीव्रजेन्द्र नन्दन ! आप सत्य संकल्प हो ! आप ऐसे अटपटे संकल्प करते रहोगे तो आपको ही तंग होना पड़ेगा। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं। उनमें आपके ही स्वजनोंके अनन्त-अनन्त प्रतिबिम्ब पड़े हैं। वहाँ कहीं इस गोपीका प्रतिबिम्ब खोकर भटकने लगे या बन्दर बन जाय, अथवा इसकी कन्याका कोई प्रतिबिम्ब कहीं अपहृत हो जाय तो इनका यहाँ क्या बिगड़ेगा ? इन्हें तो यहाँ पता भी नहीं लगेगा; किन्तु आप ऐसे ही निश्चिन्त रह सकोगे ? अपने स्वजनोंके एक-एक बिम्ब-प्रतिबिम्बको सम्हालते रहने, उनके साथ सदा सर्वत्र बने रहनेका आपका व्यसन आपको चुप बैठने देगा ? इनके तो प्रतिबिम्ब ही भटकेंगे; किन्तु आप चिद्घन तो प्रतिबिम्ब नहीं बना करते। आप भले अनन्त रूप हों, स्वयं होते हैं और वनमें गायोंके पीछे दौड़नेके समान प्रत्येक प्रतिबिम्बके पीछे स्वयं भटकते हैं।'

अच्छा हुआ कि वहाँ कोई ऋषि नहीं थे। यह झल्लाया कन्हाई उन्हें भी कुछ कह दे सकता था। मैयाने अपने लालकी पुकार सुन ली थी। माखन मटकेसे निकालकर उजले हाथ ही आ गयी—'क्या है, लाला !'

'तू इस गोपीको मार लगा !' कन्हाईने कह तो दिया, किन्तु उसकी दृष्टि मैयाके उजले हाथोंपर—छाछ सने हाथोंपर गयी तो बोला—'मैं छाछ पिऊँगा !'

'छाछ क्यों पियेगा ? दूध पी या दही खा।' मैयाने उन्हीं हाथों कन्हाईको अंकसे लगाया। भोला कन्हाई भूल ही गया है अब तक कि वह मैयाको क्यों पुकार रहा था। मचलकर बोला—'मैं छाछ पिऊँगा—सब छाछ पिऊँगा।'

मैयाके मुखपर भी मुस्कराहट आ गई। गोपी तो हँस ही रही है। भले एक पद्मगन्धाके दहीका ही छाछ है, यह कन्हाई दो घूँट तो कठिनाईसे पी पावेगा और बात कर रहा है पूरा छाछ पीने की।

'सब छाछ तू ही पियेगा ?' गोपी हँसते पूछ रही—'कोई और पीनेवाला नहीं है ? मुझे नहीं देगा।'

'तू दूध पी।' कन्हाईको दूध नहीं पीना तो कोई पी ले।

'दाऊको, भद्रको पुकार।' मैयाको लगता है कि इस धुनमें उसका लाल दो घूंट पी तो ले—यह छाछ पीना चाहता है तो छाछ ही सही।

'नहीं, उन सबको तू दही खिलाना।' अभी कन्हाईको पूरा छाछ पीनेकी धुन है।

छाछ पद्मगन्धाके दूधका है। अभी-अभी बना है। मीठा और सोंधा भी है; किन्तु मैयाका जी कन्हाईको छाछ देते जाने कैसा हो रहा है। बहुत छोटे स्वर्ण कटोरेमें थोड़े छाछमें वह मधु मिलाती है।

'उहुँ, इतना थोड़ा छाछ नहीं, सब छाछ।' कन्हाईको अभी अपनी धुन है।

'सब छाछ तो तेरे सामने धरा है, तू मटके से पियेगा ?' यह गोपी फिर बोल पड़ी।

'अरे !' मैया गोपीसे भी पहिले चौंकी। कन्हाईने मुखमें भरे छाछसे इस गोपीका पूरा मुख उज्वल कर दिया है। अब और बोल इस नटखटसे।

'मैं दही खाऊँगा, माखन भी खाऊँगा।' यह भद्र आ गया। मैया प्रसन्न हो गयी है। गोपीका मुख मैया अपने आँचलसे ही पोंछने चली थी; किन्तु उसने मुख घुमा लिया है। अपना मुख वह अपने आँचलसे पोंछ लेगी।

भद्र जानता है कि कन्हाईको खिलाना हो तो स्वयं खानेकी बात करनी पड़ती है। मैया भी जानती है कि उसका लाल अकेले खा नहीं सकता। वह झट उठ पड़ी—'आ लाल, तुझे अभी-अभीका निकाला नवनीत देती हूँ।'

'मैं भी खाऊँगा' कन्हाई भूल गया कि वह सब छाछ पीनेवाला था। मैयाने गोपीकी ओर देखकर नेत्रसे ही संकेत कर दिया कि वह चुप रहे। इस समय छाछकी चर्चा नहीं की जानी चाहिए।

मैयाका यह नीलमणि चपल है, नटखट है और भोला है। मैयाको इसे किसी प्रकार मनाये रखना है और किसी प्रकार ही इसे कुछ खिलाना है। यह तो मचलता ही रहता है। मैया बहुत प्रसन्न होती है, जब इसके

कुछ सखा आ जाते हैं। मैयाके तो सब अपने ही शिशु हैं और यह नीलमणि भी सखाओंके साथ कुछ खा लेता है।

बालक कोई ऋषि-मुनि हैं कि शान्त बैठकर, मौन होकर भोजन करेंगे। ये सब तो हँसेंगे, इधर-उधर घूमेंगे, नाचेंगे, छीना झपटी करेंगे और तब कहीं तनिक-सा मुखमें डालेंगे। ढेर-सा गिरावेंगे, अपने या दूसरेके मुखमें लिपटावेंगे और चाहे जब मैयाकी साड़ीमें मुख या हाथ पोंछेंगे। मैयाकी साड़ी तो इनके मुख-हाथ पोंछनेसे चिकनी होती ही रहती है।

मैयाको कभी साड़ीके रंगकी चिन्ता नहीं होती। वह जो भी और जिस किसी भी रंगकी साड़ी पहिन लेती है। मां ही उसे प्रायः साड़ी परिवर्तित करनेको विवश करती हैं। उत्सवमें कितनी भी उत्तम साड़ी मैयाको माँ धारण करावें, बालक उसमें मुख हाथ पोंछेंगे ही और कन्हाई या उसके सखाओंको कहाँ देखना आता है कि उनके मुख या हाथमें गोबर, धूलि या दही क्या लगा है।

बालक हाथ-मुख ही कहाँ पोंछते हैं। जब जी चाहेगा, कोई भी बालक आकर मैयाकी गोदमें बैठ जायगा अथवा उसकी पीठ या भुजासे लिपट जायगा। मैया खड़ी हुई तो उसके पैरोंसे लिपटेगा। कोई भी दो-चार बालक एक दूसरेको दौड़ाते आवेंगे और मैयाके पैरोंको भुजाओंमें भर लेंगे अथवा उसके चारों ओर घूमेंगे, दौड़ेंगे।

मैया कभी आँचलसे किसीका मुख या हाथ पोंछेगी या किसीको अंकमें उठावेगी। अनेक बार मैया तोक या अंशुको अथवा देवप्रस्थको अंकमें उठा लेती है और कन्हाई उसके अंकमें आनेको मचलता रहता है।

अद्भुत है यह गोलोक। मैयाके पास पहुँचकर कन्हाई और उसके सखा छोटे-मुन्ने हो जाते हैं। अनेक बार तो इनकी पत्नियाँ भी मैयाके पास उपस्थित होती हैं और ये सब नन्हे-मुन्नोंके समान मैयासे मचलते रहते हैं।

मैयाका आंगन, मैयाका सामीप्य कभी सूना नहीं मिलनेवाला। बालक गोचारणके लिए वनमें गये हों तो उनकी पत्नियोंसे मैया घिरी

मिलेगी। रात्रिमें भी मैयाके अंकमें सोनेवाले शिशु हैं ही। कन्हाई ही बाबाके समीप कम सोता है।

मैया तो नींद में भी अपनी शैय्यापर अपने नीलमणिको टटोलती और आधी नींदमें भी उसपर उत्तरीय ढँकती रहती है। नींदमें भी मैयाको स्वप्नमें ऊधम करते ये दीखते होंगे या वह स्वप्नमें भी इन सबोंके लिए दधि-मन्थन करती होगी।

मैया दधि-मन्थन करे या लोरी सुनावे-गुनगुनाती भी है तो इसका स्वर सुधा-वर्षा करता है। मैयाको अनेक बार घेरकर उसकी ये बालिका पुत्रवधुमें कुछ गानेपर विवश करती हैं। वात्सल्यमयी, वात्सल्य-मूर्ति मैया, इसके वात्सल्य-भाजनोंकी संख्या असीम हैं।

माँ रोहिणी—

अनेक बातें बड़ोंकी ऐसी अटपटी होती है कि वे हम बालकोंकी समझमें ही नहीं आतीं। अब यही बात कि माँ रोहिणी हमारे गोकुलकी है ही नहीं, वे मथुराकी हैं। यह भी कोई समझमें आने योग्य बात है कि एक और तो गोप-गोपियाँ कहते हैं कि सब व्रज माँका ही है। बाबा-मैया तो माँको बार-बार कहते हैं कि वही व्रजकी अधीश्वरी हैं और दूसरी और यह कि वे यहाँकी हैं ही नहीं, मथुराकी हैं। मथुरा है तो हमारे ही व्रजमें; किन्तु माँ तो हमारी हैं। हमारे घरकी हैं।

माँ कहती हैं कि वे मैया व्रजेश्वरीसे बारह वर्ष छोटी हैं! किधरसे छोटी हैं? मैयासे तो तनिक लम्बी ही हैं और मैया उन्हें जीजी कहती है। व्रजराज बाबा उन्हें भाभी कहता है। सब तो उन्हें बड़ी कहते हैं और वे कहती हैं कि वे छोटी हैं, यह कम अटपटी बात है?

पता नहीं क्या बात है कि माँ आभूषण नहीं धारण करतीं। काञ्चन-गौर स्वयं हैं, इसीसे आभूषण नहीं पहिनती होंगी। लेकिन केशोंमें माल्य-सज्जा भी नहीं करतीं।

दाऊदादाको सब माँ का कहते हैं। माँको तो कन्हाई भी है और हम सब हैं; किन्तु माँको कहाँ अवकाश मिलता है कि वे मैयाके समान किसी बालकको अंकमें लेकर बैठें। दाऊको भी तो वे कभी अंकमें नहीं बैठातीं। दाऊदादा तो बाबाके पास भी सटकर बैठता है, अंकमें कम ही किसीकी बैठता है और माँकी अंकमें तो वे बैठी मिल जायँ तो मैं, कन्हाई या कोई बालक बैठ जाता है। माँ तो किसीको भी कभी डाँटती या झिड़कती नहीं हैं।

बूढ़ी गोपियाँ माँको 'रानी बहू' कहती हैं। माँ रानी तो हैं। उनकी दृष्टिका संकेत कोई गोपी और व्रजराज बाबा भी नहीं टालता। वैसे माँ आदेश तो बालकोंको भी नहीं देतीं; किन्तु उनकी बात आदेशके समान

कन्हाई भी मान लेता है। कन्हाई तो बहुत नटखट है। यह बाबा और मैयाकी बात भी नहीं सुनता। यह तो माँकी, दाऊदादाकी और थोड़ी मेरी बात मान लेता है। माँ तो बालकोंको भी प्यारसे, समझाकर ही कुछ करनेको कहती हैं।

सब लड़कियाँ—हमारी सब बहिनें और हम सबकी सब बहुएँ भी अपनी सब बातें माँसे ही कहती हैं। माँको भी इन सबोंके लिए पता नहीं कैसे अवकाश मिल जाता है। इनमेंसे कोई आवेगी और माँ तो उसे गोदमें ही बैठाकर बैठ जायेंगी। वह माँके कानसे मुँह सटाकर फुस-फुसाती रहेगी। कभी धीरे-धीरे हँसेगी भी। माँ भी कभी उसके सिरपर और कभी पीठपर हाथ फेरती रहेंगी और उससे ऐसे धीरे-धीरे बोलेंगी कि समीप खड़ा भी कोई दूसरा कुछ नहीं सुन पावेगा। बस माँके स्वरकी तनिक झंकार मिलेगी। माँ बोलती हैं तो लगता है कि स्वर्णकी छोटी घंटी बज रही है।

ये सब लड़कियाँ मैयाके तो पूछनेपर भी केवल सिर हिलती हैं। बहिनें भी मैयासे कम ही बोलती हैं। ये सब मैयासे क्यों संकोच करती हैं? मैया तो किसीको कुछ कहती नहीं। लेकिन मैया तो हम सबकी भी कोई समस्या पूरी नहीं सुनती। कन्हाई ही मैयासे कुछ पूछने लगे तो मैया कह देती है—'अपनी माँसे जाकर पूछ।'

मैया कहती है—'तेरी माँ सब जानती हैं। मुझे कुछ पता नहीं रहता।'

तब माँसे लड़कियाँ कुछ कहकर करेंगी भी क्या? माँ ही तो हम लोगोंकी भी सब बात सुनती हैं और सबका उत्तर देती हैं। हमारे झगड़े भी सुलझाती हैं।

माँको काम बहुत रहता है। उन्हें ही घरकी सब व्यवस्थाका सञ्चालन करना रहता है। बाबाको, सेविकाओंको और गायों-वृषभोंको भी कब क्या चाहिए, माँ सब जानती हैं। आनेवाले ऋषि-मुनियों, सम्बन्धियों, अभ्यागतों, गोष्ठमें बैठे गोपों तथा मैयाके पास आयी गोपियोंके स्वागत-सत्कारकी व्यवस्था तो माँ करती ही हैं, कब किस गोपके सदन या हम बालकोंके अन्तःपुरोंमें क्या भेजना है, यह भी माँको स्मरण रहता है। वे कोई एक काम भी तो नहीं भूलती हैं।

माँ लड़कियोंकी या हम बालकोंकी बातें भी सुनती रहती हैं और बीच-बीचमें किसी सेवक या सेविकाको कुछ करनेको भी कहती रहती हैं। उन्हें किसी तक कोई सन्देश भेजना रहता है या कोई वस्तु।

अकेली माँ हैं जो हममें किसीसे कह देंगी—'लाला रे' ! तू अपने नन्दन चाचासे जाकर पूछ आ कि क्या वे आज वनकी ओर जायँगे ? वे जायँ तो मेरे लिए थोड़े तमालके पके फल लेते आवें।'

चाचासे चाहे माँकी बात ऐसे ही कहो, वे तुरन्त अपना लट्ठ उठाकर वनकी ओर चल देंगे। दूसरे भी किसीसे माँका ऐसा कोई सन्देश कहो तो वह उसे करने उसी समय उठ पड़ेगा।

'लाला ! तूने देखा है कि आज अपनी कपिलाने पूरा यवस खा लिया या नहीं ?' माँको तो एक-एक गौकी भी चिन्ता रहती है और वे जिससे पूछेंगी, वह उत्तर देनेसे पहिले गोष्ठमें देखने दौड़ जायगा।

'तेरी मैयाने आज नवीन वस्त्र परिवर्तित किये ?' माँ पूछती तो यह भी हैं और उनसे ठीक-ठीक तो बतलाना पड़ेगा। भले यह पता है कि मैयाके नवीन वस्त्र परिवर्तन न करनेपर माँ उसे या तो स्नेहसे उपालम्भ देंगी अथवा अभी दूसरे वस्त्र उसके पास भेजेंगी।

सबसे अधिक समस्याएँ कन्हाईको लेकर होती हैं या कन्हाईकी होती हैं। कोई गोपी या लड़की माँसे ही तो कहेगी कि यह चपल उसका दधि-भाण्ड लुढ़का आया अथवा उसकी चुटिया खींच आया। मैयासे तो कोई यह उपालम्भ तभी देगी, जब उसे कन्हाईको खिझाना ही होगा; क्योंकि मैया अपने लालसे पूछेगी ही। माँ तो सुन लेंगी और कहनेवालीको ही समझा देंगी या कोई युक्ति सुझा देंगी।

कन्हाईको लेकर सखाओंकी समस्या भी कम नहीं रहती। यह कभी किसीके छीकेकी सब सामग्री कपियोंको बाँट देता है। अथवा किसीका पटुका किसी भल्लूकको दे देता है।

'तू भूखा रहा ?' माँ जानती हैं कि कन्हाई किसी सखाको भूखा रख नहीं सकता।

'उसने मुझे तो अपने छीकेसे बलात् खिलाया। मैं क्यों उसके छीकेका खाऊँ ?' सखा रूठा है तो अब माँ उसे मना लेंगी। 'तेरे छीकेपर कपियोंकी दृष्टि पड़ गयी होगी या किसी छोटे कपिने उसमें झांका होगा। किसीकी दृष्टि पड़े पदार्थ नहीं खाने चाहिए' यह तो तू जानता है।'

'तूने देखा कि रीछ ही था या रीछनी ?' माँको पता नहीं घरमें बैठे-बैठे वनके समाचार कौन दे देता है।' उस रीछनीने बच्चे दिये होंगे। उसके नन्हे-मुन्नोंको सर्दी या वायु लगती होगी। वह तेरा पटुका उन्हें उढ़ावेगी या डालोंमें लपेटकर अपने बच्चोंके लिए घर बनावेगी।

'अरे, मैं कल उसे अपना कम्बल दे आऊँगा।' सखा अवश्य ताली बजाकर हँस पड़ेगा—'कन्हाईका पटुका तो छोटा है, इसीसे उसने मेरा पटुका दिया होगा।'

सखाको तो अपने इस नटखट सखाका स्वभाव पता है। यह तो ठीक बताकर कुछ करना जानता ही नहीं। किसीके कर्णपर कर्णिकार पुष्प भी सजाना होगा तो उसके कानमें फूंक मार देगा या अपनी कनिष्ठिका कुलकुला देगा।

'माँ ! यह लता इतनी क्यों फूली है ?' कन्हाई माँ से चाहे जो, चाहे जब पूछने लगेगा।

'वह तुम्हारी है। तुम्हारे शृंगारके लिए पुष्प देती है।' माँको कुछ उत्तर तो देना ही ठहरा।

'यह मेरी है ?' कन्हाई प्रसन्न होकर लताको पास दौड़ जायगा और उससे पूछेगा—'तू मेरी है ? मेरे लिए पुष्प देती है ? अच्छी है तू। मैं तेरे पुष्प अपने केशोंमें लगाऊँगा।'

कन्हाई लताको पुचकार आया, उसे सहला आया तो अब यह पक्की बात है कि वह कलसे पुष्पोंसे लदी ही रहेगी।

'यह वृक्ष इतने छोटे फल क्यों देता है ?' कन्हाईके प्रश्नोंका भी कोई ठीक ठिकाना है ?

'अभी तो ये फल आये हैं। ये धीरे-धीरे बढ़ेंगे और तब पककर बहुत मधुर हो जायेंगे।' माँ समझाती हैं।

'अभी आये हैं ?' कन्हाई सोचने लगता है—'चलकर थके हैं सब ? मैं इन्हें जल पिलाऊँ ?'

माँके अधरोंपर स्मित आता है। उनका यह लाल कितना भोला है—'ये अभी अपने मुखसे सीधे नहीं पीते। जैसे तुम्हारा गौरव तुम्हारे समान कटोरेसे दूध नहीं पीता, कामदाके स्तनोंमें मुख लगाकर पीता है। तुम वृक्षकी जड़में जल डाल दो। वृक्ष जड़से जल पी लेगा तो सब फल उसके भीतरसे जल पी लेंगे।'

कन्हाई वृक्षमें जल डालकर वहीं बैठकर झुककर देख रहा है। उसका डाला जल घट तो रहा है। अवश्य वृक्ष जल पीता लगता है।

'यह कन्हाई मुझे चिढ़ाता है।' मधुमङ्गल गम्भीर मुख बनाकर माँसे कहता है।

यही बात तेजस्वी या देवप्रस्थ कहे तो माँ कहेंगी—'नीलमणि, तुम छोटे भाईको चिढ़ाते हो ? बुरी बात है।'

तब कन्हाई भी ऐसी भंगी बनावेगा जैसे उससे भूल हो गई है। तेजस्वी या देवप्रस्थको अंकसे लिपटा लेगा और उसे कुछ देनेका प्रयत्न करेगा।

कोई बड़ा सखा माँसे यह कहे तो माँ कह देंगी—'तब क्या हुआ ? तुम भी इसे चिढ़ा दिया करो। यह तुमसे तो छोटा ही है। वैसे बड़ोंको छोटेसे स्नेह करना चाहिए।

मधुमङ्गलसे माँ कहती हैं—'आप तो ब्रह्मर्षि हो। आपको तो अपने नन्हे-यजमानपर कृपा करनी चाहिए। यह तो अभी अबोध है। इसे आशीर्वाद दीजिये।'

'माँ, यह इतना बड़ा मोदक माँगता है।' कन्हाई पूरे दोनों हाथ फैलाकर बतलाता है।

'यह छोटे मोदकका भी दो कण देना चाहता है।' मधुमङ्गल कहता है—'अभीसे यजमानको कृपण नहीं होना चाहिए। इसे उदार बनानेके लिए मैं इसका मोदक स्वयं झपट लेनेकी कृपा तो करता हूँ। माँ, तुम मोदक इतने छोटे क्यों बनाती हो ? खूब बड़ा बनाया करो।'

'बड़ा बना दूँगी तो आपको तोड़नेका श्रम होगा और यह आपका सुकुमार यजमान उसे उठा नहीं पावेगा।' माँके मुखपर भी स्मित आ जाता है। 'आप वनमें मत जाया कीजिये। मैं यहाँ आपको यथेच्छ मोदक दे दिया करूँगी।'

'तब वनमें इसे आशीर्वाद कौन देगा, कपि या भल्लूक।' मधुमङ्गल मुख बनाता है—'नहीं, मैं अपना स्वत्व छीननेका अवसर किसीको नहीं दूंगा।'

माँके समीप तो हममें कोई भी कुछ भी कहने, कुछ पूछने अथवा किसीका उपालम्भ लेकर पहुँचते ही रहते हैं। एक माँसे कुछ कह रहा है और मध्यमें ही दूसरा माँका हाथ खींचकर अपनी बात कहने लगता है। माँ एक साथ कईकी बात सुन लेती हैं और सबका समाधान भी कर देती हैं। सबको पुचकार भी लेती हैं।

कभी-कभी माँको भी उलझन तो होती होगी। एक बालक उनका हाथ पकड़कर एक ओर चलनेका आग्रह करता है और दूसरा दूसरी ओर। दोनोंका आग्रह है कि माँ पहिले उसकी बात सुन लें। बात महत्त्वकी ही हो, यह आवश्यक नहीं है; किन्तु बालकोंको तो अपनी ही बात महत्त्वकी लगती है। कन्हाई चाहता है कि माँ अभी चलकर गोष्ठमें देखें कि लोहिताकी सद्योजात बछड़ी कैसे कांपती लड़खड़ाती खड़ी हुई है। दूसरी ओर तोक हाथ खींच रहा है कि माँ देखें कि छोटी सुनहली चिड़िया अपनी नन्ही चोंच कैसे खोलकर गा रही है।

माँको इस प्रकार कई बालक एक साथ खींचने लगते हैं, किन्तु माँ एक-दोको अंकमें उठा लेंगी, दो का हाथ पकड़ लेंगी और सबका सन्तोष भी कर देंगी। तोकको कह देंगी—'चिड़ियाको गाने दो। तुम भी तो उसके साथ गाओ!'

कन्हाईको ही कह दे सकती हैं—'बछड़ीके पास मत जाओ। वह खड़े होकर चलना सीख रही है। तुमको या मुझे देखकर डरकर गिर पड़ेगी। उसकी माँ भूखी होगी, उसके लिए मैं कुछ भेजती हूँ। बछड़ी अपनी माँका दूध पीने लगेगी तब उसे देखेंगे।'

'उसे चलना नहीं आता ?' कन्हाई चकित होकर माँकी ओर देखता है—'इतनी बड़ी तो है वह।' अपना हाथ उठाकर बतलाता है। लोहिता भरपूर ऊँची गाय है तो उसकी सद्योजात बछड़ी भी बड़ी तो होगी ही।

'वह अभी तनिक देरमें कूदने-दौड़ने लगेगी।' माँको इन बालकोंका मन दूसरी ओर कर देना बहुत अच्छा आता है। उन्हें तत्काल लोहिताकी व्यवस्था करनी और उसे देखना है अतः कह दे सकती हैं—'चलो, उसे मैं भी कूदते देख आऊँ।'

मैयाके समान बालक माँसे लिपटे ही रहते हैं और उनकी साड़ीमें भी हाथ-मुख पोंछते हैं। वे न भी पोंछें तो माँ स्वयं उनका मुख, हाथ या शरीर पोंछती हैं; किन्तु माँ ऐसी व्यवस्थामयी हैं कि उनका वस्त्र सेविकाएँ शीघ्र परिवर्तित करा देंगी। माँका वस्त्र और शरीर निरन्तर व्यवस्थामें संलग्न रहनेपर भी स्वच्छ बना रहता है।

माँको तब भी अवकाश नहीं मिला करता. जब कन्हाई गो-चारण करने वनमें गया हो या बाबाके समीप सखाओंके साथ हो। कभी जन्म-नक्षत्रके कारण कन्हाईके साथ वनमें जानेको न मिले तो वह दिन ही काटना कठिन हो जाता है। पूजादि तो दिनभर चलती नहीं और बाबा भी बड़े गोपोंको लेकर बैठ जाते हैं। बड़े गोपोंकी बात कोई गुमसुम बैठा कब तक सुनेगा ?

उस दिन माँके समीप दिनमें जाओ तो माँको घेरे उनकी बालिका पुत्रवधुमें मिलेंगी। माँ ही कह देती है—'भद्र ! लाला ! तेरे आगे ये लड़कियाँ संकोच करती हैं। तू बाबाके पास बैठ थोड़ी देर !' अब माँकी थोड़ी देर तो सायं-काल तक पूरी होनेवाली नहीं। ये उनकी 'लड़कियाँ' तो उन्हें छोड़नेसे रहीं। चार जायेंगी तो दूसरी दस और आ जायेंगी। कन्हाई रहता है तो वह इन सबसे भी ठीक सुलझ लेता है। इनको चिढ़ा देता है या इनकी चुटिया खींच देता है। वह तो इनके साथ गा लेता है और नाच भी लेता है। ऐसेमें अकेले गोष्ठमें सद्योजात गायों और उनके नवजात बछड़े-बछड़ियों-से ही तो खेला जा सकता है। भद्रको इन नवजात बछड़े-बछड़ियोंसे शीघ्र परिचयकर लेनेका अच्छा अभ्यास है।

माँको पता नहीं क्या-क्या आता है। अपने अन्तःपुरमें कोई उत्तम कलाकृति देखकर पत्नीसे पूछो—'यह तुमने किससे सीखा ?'

'माँने सिखलाया !' वह उल्लाससे चहकेगी ।

'यह माल्य-ग्रन्थन तुमने किया ?'

'हाँ' एक ही उत्तर—'माँसे कल ही सीखा है ।'

माँ इन सबोंको गायन, वाद्य-वादन और नृत्य भी सिखला देती हैं; किन्तु ये सब कहती हैं—'माँ स्वयं नृत्य नहीं करतीं और कदाचित ही क्षण-दो क्षणको गाती हैं । वे तो केवल समझा देतीं हैं और कहीं त्रुटि हो तो सुधार देती हैं ।'

'माँ ! तुमको मल्लविद्या और लाठी चलाना भी आता है ?' भद्रने माँसे एक दिन पूछा तो दूसरी गोपियाँ हँस पड़ीं ।

'यह हमारे मल्ललालजीको आता है ।' माँ और प्रायः सब गोपियाँ नन्दन चाचाजीको मल्ल ही कहती हैं; किन्तु माँने गम्भीर होकर कहा—'क्षत्रिय-बालिका हूँ, अतः पिताश्रीसे मैंने अश्वचालन, रथ-चालन और खड्ग-चालन भी सीखा है । तुमको असिचालन सीखना है ?'

गोपियाँ और भद्र भी माँका मुख देखते रह गये । अन्ततः माँको बूढ़ी गोपियाँ रानी भी तो कहती हैं । वे ऐसे ही तो नहीं कह करतीं । भद्रने तो माँसे सचमुच थोड़ा असि-चालन सीखा । गोपकुमारको भी तो अस्त्र-चालन और धनुर्विद्या आती ही चाहिए; किन्तु कन्हाईकी इसमें रुचि नहीं है और माँके पास अवकाश ही नहीं रहता ।

माँको हरिताभ (धानी) और श्वेत वस्त्र प्रिय हैं । उन्हें कभी लाल, सिन्दूरी, पाटल या पीतवस्त्रमें देखा नहीं । चित्रवर्णा वस्त्र तो वे पहिनती ही नहीं हैं । उत्सवके अवसरोंपर भी मैयाके आग्रह करनेपर जब दो-चार अलंकार धारण करती हैं, पीताभ या किंचित् पाटलाभ श्वेत वस्त्र ही पहिनती हैं; किन्तु उन्हें पहिनकर तो माँ महासरस्वती जैसी लगती हैं ।

अवश्य ही माँके सघन घुंघराले काले केशोंके मध्य सिन्दूर-रेखा और उनके देदीप्यमान भालपर सिन्दूर बिन्दु जगमगाता रहता है । माँके विशाल लोचन बिना लगाये ही अञ्जन-अञ्जित लगते हैं और माँके करोंकी कोमल लम्बी अंगुलियाँ तो पुष्प-कलिका जैसी हैं ही ।

'माँ ! तुम गाओ !' कन्हाई ही कभी-कभी माँके अङ्कमें बैठकर, उनके मुखकी ओर मुख करके, उनके कपोलपर कर रखकर मचलता है तो माँ गुनगुनाने लगती हैं। माँ कभी उच्च स्वरसे नहीं गातीं; किन्तु वे गुनगुनाने लगती हैं तो गायक-पक्षी भी अपना संगीत भूलकर चुप हो जाते हैं। उस समय माँ केवल कन्हाईके मुखकी ओर देखती हैं और कभी-कभी उसकी अलकें हिला देती हैं।

ऐसा अवसर भी कम ही आता है। माँ शीघ्र ही चौंक उठेंगी। उन्हें कोई आवश्यक-कर्तव्य स्मरण आ जायगा। कन्हाईको स्नेहसे पुचकार-कर किसी सेविकाको कुछ कहने लगेंगी। वे तो हमारे गोलोककी अधीश्वरी हैं। उन्हें भला अवकाश कहाँ है।

ताऊ-ताई–

अपना समस्त गोलोक ही एक ही परिवार है और ऐसा परिवार कि उसमें कहीं परायापन है ही नहीं। फिर यहाँ देश और कालको गति तो है नहीं। अतः प्रयोजन हो तो एकके अन्तःपुरकी भी पत्नियोंके पृथक-पृथक अत्यन्त विशाल सौध तथा उद्यान हैं और दूसरे प्रकारका प्रयोजन हो तो ताऊ-चाचा आदि सब ऐसे रहते हैं कि उनको धीरेसे ही पुकारकर बुला लो। वे दूसरे कक्षमें भी रहते नहीं लगते। ऐसा लगेगा कि पूरा गोलोक एक कक्षमें ही रहता है।

श्रीव्रजराज बाबाके दो बड़े भाई हैं और दो ही भाई उनसे छोटे हैं। इनमें-से बड़े ताऊजी उपनन्दजीकी रुचि प्रारम्भसे अद्भुत है। वे व्यवस्थामें रुचि ही नहीं रखते। इसीलिए तो उनको व्रजराज-पद स्वीकार नहीं हुआ। जिसके जो मनमें आवे करते रहो, जिसको जैसा ठीक लगे, वैसा करो, सामने देखते भी वे रोक-टोक नहीं करेंगे।

बड़ोंको अपनेसे छोटोंको उपदेश पिलाते रहनेका व्यसन होता है; किन्तु बड़े ताऊजीमें यह नामको भी नहीं है। उनसे जब तक कोई पूछे नहीं, अपनी सम्मति नहीं देते; किन्तु जब सम्मति देते हैं, इतनी पक्की और सकारण देते हैं कि सब बड़े गोप भी उनकी बातको महर्षि शाण्डिल्यके आदेशके समान बिना एक शब्द बोले मान लेते हैं।

बड़े ताऊजी तो अपने घरमें और अपने पुत्रोंसे भी कुछ नहीं कहते। उनसे कोई कहे—'आप किसीके त्रुटि-पूर्ण व्यवहारको रोककर समझाते क्यों नहीं ?' तो कह देते हैं—'थोड़ी त्रुटि करके उसकी हानिका अनुभव कर लेनेसे उत्तम ज्ञान स्वयं हो जाता है। दूसरेके समझानेसे उसके प्रति आदर होनेसे व्यक्ति उसकी बात उस समय तो मान लेगा; किन्तु वैसी त्रुटि वह पुनः करेगा। क्योंकि जो वह कर रहा था, ठीक नहीं था, यह समझानेपर भी उसे ठीक ग्रहण नहीं होगा।'

शरीरसे लम्बे, तनिक दुबले बड़े ताऊजीके सिर और श्मश्रुके सब केश पूरे श्वेत हैं। लोग कहते हैं कि वे व्रजराजबाबासे आठ वर्ष बड़े हैं। वे श्वेत उष्णीष और श्वेत ही धोती पहिनते हैं। विशाल भाल और बड़े-बड़े सौम्य नेत्रवाले ये बड़े ताऊजी तो ऋषि जैसे ही लगते हैं। अवश्य हाथमें एक हल्का लकुट रखते हैं, अन्यथा तो वे पादुका पहिने ऋषि ही हैं।

कदाचित् ही कभी अपनी ओरसे किसीको कुछ कहेंगे अथवा किसी चर्चामें सम्मति देंगे। उनसे तो पूछो तब अपनी सम्मति सूचित करेंगे और उनकी सम्मति तो अन्तिम तथा सर्वमान्य होनी ही है।

हमारे यहाँका कोई महोत्सव बड़े ताऊजीके बिना पूरा नहीं होता। बड़े गोपोंकी कोई परामर्श करनेवाली बैठक उनकी सम्मतिसे ही सम्पूर्ण होती है; किन्तु बहुत आग्रह करनेपर ही वे अवसर विशेषपर किसीके यहाँ जाते हैं। प्रातः-सायं तो वे व्रजराजबाबाकी चौपालमें ही बैठे रहते हैं। उस समय तो सभी बड़े गोप वहीं बैठते हैं। कदाचित बड़े ताऊजीके वहाँ बैठनेसे ही वहाँ बैठते होंगे।

बड़े ताऊजीके पास हम बालकोंमें-से कोई भी थोड़े क्षण भी नहीं बैठता। व्रजराजबाबा भी उनका इतना सम्मान करते हैं, उनको 'दादाजी' कहते हैं तो उनके पास गुमसुम हो तो बैठना पड़ेगा। उनको तो समीप जाकर बस एक बार उनके पैर छू लिये और भाग आये। उनके पास तो उनके पुत्र भी नहीं बैठते हैं।

कन्हाईकी बात सबसे विचित्र है। यह इतना चपल है कि बड़े ताऊजीके भी अंकमें जा बैठता है और उनके श्मश्रुओंमें भी अंगुलियाँ नचाता उनसे पूछ लेता है—'दाऊजी, आपके श्मश्रु इतने उज्ज्वल कैसे हुए ?'

कन्हाई तो अब भी ताऊजीको दाऊजी ही कहता है। पहिले छोटा था तो इसे ताऊ कहने नहीं आता था और अब नटखटपनसे ताऊको दाऊ कहता है। बड़े ताऊजी भी इससे हँसते हैं, बोलते हैं और इसे अपनी भुजाओंमें घेरे रहते हैं। इसे श्मश्रुमें अंगुली नचानेसे भी मना नहीं करते। रानी माँ कहती हैं—बड़ोंके श्मश्रु छूना अनुचित है, लेकिन यह कन्हाई मानता ही नहीं है।

बड़े ताऊजी श्वेत-गौर हैं। दूधसे तनिक ही कम उजला उनका शरीर है और उनके समान ही उज्ज्वल वर्णकी, दुबली, खूब ऊँची बड़ी ताई तुंगी ताई हैं। मैया ही नहीं, रानी माँ भी हाथमें आँचल लेकर उनके पैरोंपर सिर रखती हैं। लेकिन नटखट कन्हाई उन्हें 'दुंगी दाई' कहकर खिलखिलाकर हँसता है।

मैयाने अनेक बार कन्हाईको मना किया—'ताईको दाई नहीं कहा करते।' लेकिन ताई ही मैयाको मनाकर देती हैं—'यशोदा ! मेरे लालको रोकती क्यों है ? यह ठीक तो कहता है। मैं इसकी दाई ही तो हूँ। यह कभी मेरे अञ्चलमें सिर छिपा लेता था तो मेरा सूखा वक्ष भी भरकर टपकने लगता था।'

ताईके बड़े पुत्र अर्जुनको हम सब 'बूढ़ा दादा' कहते हैं। वह दाऊदादासे केवल सात दिन छोटा है और बड़े ताऊजीके समान ही दुबला, लम्बा है। बोलता है तो बड़े गोपोंके समान गम्भीर बनकर बहुत कम मुस्कराता है। इसीसे तो हम सब उसे 'बूढ़ादादा' कहते हैं। लेकिन बहुत कम बोलता है। गायें घेरने भी सबसे पहिले वही दौड़ता है।

बड़े ताऊजी और अर्जुनके सीधेपनकी ताऊजीके छोटे कुमार तेजस्वीमें गन्ध भी नहीं है। है तो तेजस्वी कन्हाईसे भी दो महीने छोटा; किन्तु ऐसा तेजस्वी है कि पूछो मत ! वह तो दाऊदादाको और बड़े गोपोंको भी कुछ कहना होता है तो आदेश जैसे स्वरमें ही बोलता है।

'तू थक गया है। चल, चुपचाप पल्लवतल्पपर लेट रह !' कन्हाईका हाथ पकड़कर उससे सीधे ऐसे वही कह सकता है। उसकी बात कन्हाई भी नहीं टालता।

'दादा ! अपना लकुट ले और उठ तो !' तेजस्वी दाऊदादाको भी ऐसे ही हाथ पकड़कर उठा देता है।

श्वेत-गौर बड़ी-बड़ी पानीदार आँखोंवाले तेजस्वीका कोमल मुख तनिक-सी बातमें तमतमाकर लाल हो उठता है। वह अपना नन्हा लकुट उठाकर दो लड़ते वृषभोंको भी डाँट दे सकता है—'तुम दोनों दूर-दूर हटोगे या नहीं ?'

तेजस्वी दाऊदादाके साथ लगा रहता है; किन्तु गोप-गोपियाँ उसे मेरा सह-सेवापति कहते हैं। मेरे अन्तःपुरमें तो उसे बहुत स्नेह प्राप्त है और वह तो अपनी भाभियोंसे भी आदेशके स्वरमें ही बात करता है।

बड़े ताऊजीके एक पुत्री है मन्दिरा जीजी। यह मुझसे दो या तीन महीने बड़ी है। दाऊदादसे भी बड़ी है। बहुत स्नेहमयी है, सीधी है। कन्हाईके समान ही हम सबको स्नेह करती है। लेकिन ताऊजीको पता नहीं क्या सूझी कि जीजी छोटी थी, तभी उसका विवाहकर दिया। वह बिचारी अपनी सुसराल ही अधिक रहनेको विवश है।

हम गोपोंमें सबके विवाह बहुत छोटे रहते ही हो जाते हैं। इसीसे विवाह तो हममें-से सबसे छोटे तोकका भी हो गया है। बूढ़े दादा अर्जुन और तेजस्वीके भी अन्तःपुर हैं; किन्तु मैं कम ही किसी सखाके अन्तःपुरमें कभी जा पाता हूँ। कन्हाईको ही सबके अन्तःपुरोंमें घूम करनेकी धुन है। वही कभी बलात् किसी भाभीके अन्तःपुरमें पकड़ ले जाय तो बात दूसरी है।

बड़े ताऊजीको तो अपने घरकी भी सुधि नहीं रहती। तुंगी ताई भी ताऊजी ही जैसी सीधी हैं। वे तो मैयाके भी पूछनेपर कुछ बतलाती नहीं हैं। कह देती हैं—'रोहिणी बहिनसे पूछ लो, मैं भी उनसे ही पूछती हूँ। वे रानी हैं, उनसे अधिक भला हममें कोई क्या जानेगी।'

रानी माँ ही तुंगी ताई और उनकी पुत्रवधुओंका अन्तःपुर भी सजवाती हैं। उस गृहकी भी खोज-खबर रखती हैं और व्रजराजबाबाके लिए तो सबके गोष्ठ ही अपने हैं। उन्हें सबकी गायों, वृषभों, बछड़े-बछड़ियोंका हाल पता रहता है।

अवश्य 'बूढ़ादादा' अर्जुन अब हम सबके पशुओंको हमसे भी अधिक पहिचानने लगा है। वही गायें अधिक घेरता है। भले चुप रहता है और बहुत कम बोलता है, गायें, वृषभ ही नहीं, बछड़े तक उसकी बात समझते हैं।

ताऊजी और ताईजीसे मिलने जानेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। आवश्यकता तो किसीसे मिलने उसके यहाँ जानेकी नहीं पड़ती। सब व्रजराजबाबा या मैया व्रजेश्वरीके समीप प्रातः-सायं स्वयं आ जाया करते हैं।

व्रजराजबाबा छोटे ताऊजीको 'छोटे दादा' कहते हैं। छोटे ताऊजीको कोई अभिनन्द कहते हैं और कोई महानन्द। नाम तो उनका अभिनन्द ही होगा; किन्तु उनके परम मौजी स्वभावके कारण उन्हें लोग महानन्द कहने लगे होंगे। उनको सदा खुलकर उच्च स्वरसे हँसते देखा जाता है। तनिक-सी बातपर ही नहीं, वे तो अकारण भी हँसते हैं।

कल्पना ही नहीं की जा सकती कि छोटे ताऊजी कभी कोई व्यवस्था सम्हालेंगे। उनको तो बैठे रहना प्रिया है। कभी पूछो—'ताऊजी, आपके गोष्ठमें कितनी गायें हैं?'

वे इस प्रश्नपर भी पहिले हँसेंगे और तब कहेंगे—'अरे, गोष्ठमें सब गायें ही हैं। कुछ वृषभ, बछड़े-बछड़ियाँ भी हैं और वे सब अपनी संख्या बढ़ाते रहना जानते हैं। वहाँ कोई दूसरा पशु नहीं है।'

'पर हैं कितने?' कोई पूछ ही ले तो कहेंगे—'तुझे बहुत पड़ी हो तो जाकर गिन देख। वे न एक पंक्तिमें खड़े होंगे और न तुझे ठीक गिनने देंगे। चार गिनेगा तो दस उनमें आ मिलेंगे या वे चारों भागकर चार सौके बीचमें घुस जायेंगे। तू उनको गोबरका टीका लगाते-लगाते थक जायगा।'

छोटे ताऊ भी गोरे हैं, पाटल-गौर वर्ण; किन्तु मोटे हैं। व्रजराजबाबा-से उनकी तोंद भी बड़ी है और पीली धोती तथा पाटल वर्णका उत्तरीय धारण करते हैं। उनके केशों और श्मश्रुमें कहीं-कहीं काले केश भी हैं।

गोपोंकी गोष्ठीमें छोटे ताऊ या तो चुप बैठे रहेंगे या किसीकी बातपर कोई टिप्पणी करेंगे तो ऐसी कि सब हँस पड़ें। जैसे उनसे पूछो—'गायें किधर चरने जायेंगी?'

'यह भी पूछनेकी बात है?' वे हँसेंगे—'उन्हें मेरे भवनमें मत हाँकना। अपने भवनमें चरावेगा? अरे वनमें जायेंगी। उन्हें वनकी ओर करके उनके पीछे-पीछे चल, उनका जिधर चरनेका मन होगा, चल देंगी।'

'ताऊजी! गायोंके पीछे-पीछे क्यों चलें?' मधुमङ्गल छोटे ताऊजीसे परिहास भी कर लेता है। यह तो ऐसा है कि महर्षि शाण्डिल्यसे भी परिहास कर लेता है।

छोटे ताऊजी न किसीकी बातका बुरा मानते और न किसी बातसे अप्रतिभ होते। मधुमङ्गलको उन्होंने कहा—'छोटे पण्डितजी! गायोंके

पीछे-पीछे चलोगे तो वे आपको गोबर फिर भी दे देंगी और कभी-कभी गोमूत्रमें भींगी पूँछसे आपका अभिषेक बिना दक्षिणाकी आशाके करती चलेंगी। आप तो जानते ही हैं कि गोमूत्रमें गङ्गाजीका निवास है। गायोंके आगे चलोगे तो पता नहीं वे आपके पीछे जायँगी और आपकी अवज्ञा करके दूसरी ओर चली जायँगी। वे अपनी सींगसे आपकी पीठ भी खुजलाने लग सकती हैं।'

कन्हाई छोटे ताऊजीके पास गोष्ठमें पहुँचता है तो उन्हें प्रायः लिटा लेता है और उनकी तोंदपर ही बैठता है। ताऊजी भी इसे पेटपर बैठाकर प्रसन्न होते हैं। वैसे तो वे पेटके बल लेट जाते हैं और हम सब बालकोंको अपनी पीठ और पैरोंपर कूदनेको कहते हैं।

'दाऊजी, हाथी किसी पतले मार्गमें चला जाय और मार्ग आगे बन्द हो तो क्या करेगा ?' कन्हाईको पता नहीं कितने अटपटे प्रश्न सूझते हैं और सब उलटे-सीधे प्रश्न इसे छोटे ताऊसे ही पूछने रहते हैं। यह तो ताऊको दाऊ ही कहता है।

'करेगा क्या ?' ताऊजीके पास सब प्रश्नोंके उत्तर सदा प्रस्तुत रहते हैं—'बैठकर सोचेगा कि क्या करूँ अथवा कौवेकी भाँति ऊपर उड़ जायगा।'

'हाथी कैसे उड़ेगा ?' कन्हाई ताली बजाकर हँसेगा, इसे हँसानेको ही तो ताऊजी ऐसे उत्तर देते हैं। 'उसके पंख तो होते ही नहीं।'

'अरे हाँ, उसके तो पंख नहीं होते।' ताऊजी ऐसे हंसेंगे कि उनके पेटपर बैठा कन्हाई झूला झूलने लगे—'तब वह व्रजराजभाईके कुमारको पुकारेगा कि मुझे यहाँसे बाहर निकालो।'

छोटी ताईका नाम ही पीवरी नहीं है। वे हैं भी अच्छी मोटी और कुछ थुलथुल शरीर। ताऊजीके समान ही पाटल-गौर हैं और खिलखिलाकर हँसते समय उनका मुख और लाल हो जाता है। वे भी किसीकी बातका बुरा नहीं मानतीं। वे तो हँसती कहती हैं—'मेरी सब देवरानियाँ और जेठानीजी भी दुबली-पतली हैं। इन सबके बच्चोंकी धाय तो मैं हूँ। नीलमणि और इसके सब भाई भी मिलकर मेरी छातीका दूध नहीं चुका पाते थे।'

'तेरे ताऊको तो ढूंढना पड़ता है।' छोटी ताई अनेक बार खीजकर कहती हैं—'मैं तो उनको ढूंढनेमें ही तंग रहती हूँ।'

'ताऊजी इतने तो मोटे हैं।' कन्हाई दोनों हाथ फैलाकर कहता है—'दुबले और छोटे बच्चे हैं या बिल्लीके शावक कि कहीं छिप जायँगे ?'

'तू नटखट है।' ताईजी कन्हाईको अंकमें उठा लेती हैं—'तेरे ताऊको न जलपानकी चिन्ता, न भोजनकी। जहाँ जिसके गोष्ठ-चौपालमें बैठ गये, उसीका सत्कार सानन्द स्वीकार कर लेंगे। तेरे बाबाके गोष्ठमें हीं सो जायँ यदि मैं उन्हें रात्रिमें ढूंढ़कर घर न ले जाऊँ।'

छोटी ताईके दो पुत्र हैं। इनमें विशाल तो आयुमें दाऊदादासे तीन सप्ताह छोटा होकर भी उनसे ऊँचा है। ऊँचा और कुछ मोटा भी होनेसे सब उसे विशाल कहते होंगे। लेकिन उसे गोपियाँ 'व्रजराजकुमारका अश्व' कहती हैं। माता-पिताके समान विशाल हँसता तो नहीं रहता; किन्तु किसीकी बातका बुरा भी नहीं मानता। अपनेको अश्व कहनेका तो तनिक भी नहीं मानता।

कन्हाई विशालको हाथ पैरोंके बल होनेको कहकर चाहे जब उसकी पीठपर जा चढ़ता है और विशाल भी इसे पीठपर लेकर प्रसन्नतासे देर तक घुमाता रहता है। कन्हाईको कोई ऊँचे स्थानका फल या फूल लेना हो तो विशालको बैठाकर उसके कन्धेपर चढ़ जायगा और तब विशालको उठकर उस स्थान तक चलनेको कहेगा।

विशालसे और कन्हाईसे भी छोटा है विशालका छोटा भाई देवप्रस्थ। हम सब उसे देव कहते हैं। सचमुच देवकुमार जैसा सुन्दर और सुकुमार है हमारा देव। हम सब उसको अपने मध्य बैठाकर सजाते हैं। कन्हाई बड़े चावसे देवका श्रृंगार करता है।

'तू देवता है ?' कोई कभी भी देवसे पूछ लो।

'हाँ !' देव कभी अस्वीकार नहीं करता।

'किसका देवता है ?' पूछनेपर दाऊदादा, कन्हाई या मेरा जो समीप हो उसका दौड़कर हाथ पकड़ेगा और उससे सटकर खड़ा हो जायगा।

'लालजी, तुम तो देवता हो। हमें आशीर्वाद दो।' इसकी भाभियाँ इससे कहती हैं। इसकी भाभियाँ कोई थोड़ी हैं।

'मैं छोटा हूँ—छोटा देवता।' भोला देव कहता है—'बड़ा तो दाऊदादा है, कन्हाईदादा है, भद्रदादा है। उससे कहो, वे ढेरों वरदान दे देंगे।'

देवसे बड़ी है उसकी सगी बहिन नन्दिरा। हम सबकी नन्दिराजीजी। तेजस्वीकी बहिन मन्दिराजीजीसे छोटी; किन्तु सदा उसीके साथ लगी रहती है। लगता है कि दोनों सहोदरा हैं।

छोटे ताऊको तो अपने भी कलेऊ, भोजनका समय स्मरण नहीं रहता। छोटी ताई हम सबको कहती हैं—'तुम सबके सब कुछ तो खाया करो। सब दुबले हो। सब मेरे यहाँ आ जाया करो और जितना भाये माखन-दही खा जाया करो।'

ताई कहती हैं—'देव तो छुई-मुई जैसा है ही, विशाल भी केवल मुख जूठा करके भागता है।'

विशालको कन्हाई खिलाता ही रहता है और कन्हाईके करका ग्रास मिले तो कोई अपनी मैयाके यहाँ भोजन करने बैठेगा? कन्हाईके करके ग्रासको तो मधुमङ्गल भी मुख खोल देता है और कहता है—'यजमान, ब्राह्मणके मुखमें अग्निदेव रहते हैं। अग्निमें अपने हाथसे आहुति डालनेका पुण्य है। ब्राह्मणको हाथ चलानेका भी कष्ट क्यों देते हो?'

'मधुर और दधि-नवनीतमें उच्छिष्ट दोष नहीं होता।' छोटे ताऊजी मधुमङ्गलकी यह बात कहकर बार-बार हँसा करते हैं।

चाचा-चाची—

अनुयायी अथवा अनुगामी किसीको कहीं ढूंढ़ना हो तो बड़े चाचाको देख लो। उनका नाम सन्नन्द भले हो, अपने बड़े भाई व्रजेश्वर बाबाके ऐसे अनुगामी हैं कि उनका नाम नन्दानुग होना चाहिए।

बड़े चाचा बड़े ताऊ उपनन्दजीके समान श्वेत-गौर भी नहीं हैं और छोटे ताऊ महानन्दजीके समान पाटल-गौर भी नहीं। जैसे काञ्चन-गौर वर्णमें दूध मिला दिया गया हो। पीताभ-गौर।

अच्छे लम्बे तड़ंगे हैं। ऊँचाईमें बड़े ताऊसे भी दो अंगुल ऊँचे और दुबले नहीं हैं। मोटे भी नहीं हैं। अपने आकारके अनुसार भरे पुष्ट शरीरके हैं। बड़े-बड़े रतनारे नेत्र, विशाल भाल, घुंघराले श्मश्रु केश जिनमें एक भी श्वेत नहीं है। बड़ा भव्य आकार है बड़े चाचाका।

हँसमुख हैं बड़े चाचा और मौजी हैं। उच्च स्वरसे गाते हैं। सब कहते हैं कि गोपोंके सामुहिक नृत्यमें उनकी समताका कोई नहीं है। वे सबको थका देते हैं। अपने सिरसे ऊँची लाठी रखते हैं। उनसे भारी लाठी केवल मल्ल चाचाकी है; किन्तु मल्ल चाचाकी लाठीसे बड़े चाचाकी लाठी लम्बी है।

बड़े चाचा सतरंगी पगड़ी बांधते हैं और पाटल-वर्णी धोती पहिनते हैं। उनकी अलकें सदा तैल स्निग्ध रहती हैं। उन्हें गायोंसे बहुत अधिक स्नेह है। सब उन्हें गायोंका विशेषज्ञ बतलाते हैं। गायें चराने तो हम सब जाते हैं, किन्तु बड़े चाचा प्रातःसायं गोष्ठोंमें घूम आते हैं। वे गायों-वृषभोंको थपकाते हैं—सहलाते नहीं और उनका कान सूंघते हैं, कभी-कभी उनका गोबर भी।

वही निर्देश करते हैं कि किस गौ या वृषभको कब कौन-सी विशेष तृणौषधि, अन्न, गुड़ अथवा घृत दिया जाना चाहिए। वे समीप जाते हैं तो धर्म जैसा महावृषभ भी उनसे बछड़ेके समान खेलने लगता है।

कोई बछड़ा या बछड़ी उत्पन्न होनेपर वे हम सबको पुकार लेते हैं और उसकी पूंछ, जीभ, खुर, रोमावली दिखा-दिखाकर उसका गुण, प्रभाव बतलाते हैं।

'मैं समझता था कि मैं सच्चा गोपाल हूँ। गायोंके सम्बन्धमें सब आवश्यक जानकारी मुझे है।' बड़े चाचा एक दिन व्रजराजबाबासे कह रहे थे—'किन्तु हमारे नीलमणिने मेरा यह भ्रम दूर कर दिया। सच्चा गोपाल तो हमारा यह नन्हा नीलमणि है। यह किसी गौको दूरसे देखकर बता देता है कि वह पाटल-गन्धा है या आम्र-गन्धा।'

'चाचा ! यह उशीर-गन्धा बनेगी।' नीलमणि नवजात बछड़ीको भी देखकर कह देता है और उसकी बात कभी टलती नहीं।

'चाचा, यह कन्हाई नटखट है। यह आपको भी ठग लेता है।' मैंने चाचासे कहा—'इसे कुछ आता-जाता नहीं है; किन्तु गायें और बछड़ियाँ इसकी बात मान लेती हैं। यह बछड़ीके कानमें धीरेसे कह देता होगा—'तू उशीर-गन्धा बनना' और बछड़ी बन जाती है।'

चाचा मेरी बात सुनकर खूब हँसे। ये बड़े लोग हम बालकोंकी ठीक बात भी नहीं मानते, उलटे हँसते हैं। चाचाने मुझसे कहा—'तब भी ठीक गोपाल तो तुम्हारा यह छोटा भाई ही हुआ। मेरी या और किसीकी बात मानकर बछड़ियाँ कुछ बनती नहीं हैं। कुछ बनना उन्हें आता भी नहीं है; किन्तु नीलमणिके कहनेसे वे बन जाती हैं, तब तो बहुत अद्भुत बात है। इसे गायों-बछड़ियोंको अपनी इच्छानुसार बनाना आता है।'

'इसे तो और भी जानें क्या-क्या आता है।' मैंने चाचाको बतलाया—'यह तो किसी उशीर-गन्धा गौ को पद्म-गन्धा बननेको कह दे तो वह बन जायगी। लेकिन इसे केवल अपनी अंगुलियाँ गिनना आता है।'

'चलो इतना तो आता है।' चाचा कन्हाईको पता नहीं क्यों सबसे चतुर मानते हैं। मुझसे बोले—'अधिक गिनना अपने छोटे भाईको तुम सिखला देना।'

यह नटखट सीखे तब तो कोई सिखावेगा।

कुवला चाची बड़ी चाची हैं। कन्हाई उन्हें कभी-कभी 'छाछी' कहता है। इसे तो वे नवनीत और दधि खिलाती हैं। छाछ तो वे हममें-से किसीको

नहीं देतीं। वे तो कहती हैं—'छाछ वृषभोंकी वस्तु है। छाछ पीकर वृषभ सुपुष्ट अंग होते हैं।'

बड़ी चाची सामान्य आकारकी हैं; किन्तु चाचाके पास खड़ी होती हैं तो छोटी लगती हैं। उनके कन्धे तक आती लगती हैं। गोलमुख, भरा पर छरहरा शरीर, केशर स्नान करके आयी हों ऐसा वर्ण।

बड़ी चाचीको आभूषण और माल्यसे सज्जिता रहना प्रिय है। अंगराग भी वे बहुत सम्हालकर लगाती हैं। उनके कर मेंहदी और चरण अलक्तकसे सजे ही रहते हैं। वे अञ्जन न भी लगावें तो उनके नेत्र अञ्जन-रञ्जित ही लगेंगे।

उनको सुचित्रित कौशेय वस्त्र प्रिय हैं और वस्त्रों तथा केशमें भी पुष्पसार लगाती हैं। मैया व्रजेश्वरी कभी हँसकर कहती हैं—'मेरी बड़ी देवरानी आती है तो मेरे आँगनमें पुष्पवाटिका खिल उठती है।'

लेकिन बड़ी चाची सजी रहनेपर भी बहुत परिश्रमी हैं। कार्य-निपुणा हैं और ऐसी कुशला हैं कि प्रांगण भी उपलिप्त करेंगी तो लगेगा कि किसी चित्रकारने चित्र रचनाके लिए प्रांगण-भूमिको फलक बनाया है। एक छींटा न तो उनके शरीरपर पड़ेगा और न भित्तिपर।

'कुवला, तू ऐसे कैसे दधि-मन्थन करती है कि तेरे वस्त्र और करोंपर भी दधि-बिन्दु नहीं पड़ते।' मैया प्रसन्न होकर कहती हैं—'तू औरोंसे अधिक ही नवनीत भी निकाल लेती है।'

'मैं पुत्रवधुओंकी शिक्षिका सास जो हूँ।' बड़ी चाची हँसती हैं तो जैसे चन्द्रिका छिटक जाती है। उनके करोंमें कलाकी देवीका वास है। जो करेंगी, उसीमें सौष्ठव और सजगता होगी। हम सभीकी पत्नियाँ उन्हें घेरे रहती हैं और वे भी बड़े स्नेहसे उन्हें पता नहीं क्या-क्या सिखलाती रहती हैं। इसका यह परिणाम है कि बड़ी चाचीका स्नेह और सामीप्य हम सबको कम ही मिल पाता है। उसपर उनकी बालिका-पुत्रवधुओंने अधिकार कर लिया है। उन सबसे ही चाचीको अवकाश नहीं।

बड़े चाचाका बड़ा पुत्र ऋषभ है तो मुझसे पाँच ही दिन बड़ा; किन्तु आकारमें विशालसे कुछ ही छोटा लगता है। रूप, रंग, आकारमें

जैसे अपने पिताकी प्रतिमूर्ति हो और हम सबमें सबसे बड़ी लाठी भी ऋषभकी ही है।

पता नहीं ऋषभको हरा रंग क्यों इतना प्रिय है कि उसके वस्त्र, उष्णीष सब हरे रंगके। केशोंमें भी तोतेके पंख और पल्लव सजाता है। लुकाछिपीमें ऊँची घासमें लेट जायगा या सघन लताओंमें दुबक रहेगा तो इसे ढूंढ़ना सरल नहीं रहता।

ऋषभ संकोची स्वभाव है। दाऊदादाके समीप या उनके दलमें रहता है। कन्हाईके नटखटपनसे बचनेके लिए गायें घेरनेमें वरूथपका आदेश मानता है।

ऋषभका छोटा भाई अंशु तो देवप्रस्थसे भी छोटा है। अंशु ऐसा दुर्बल है जैसे कोई किरण हो, उज्वल किरण और उसे श्वेत वस्त्र, श्वेत पुष्प प्रिय हैं। केशोंमें हंस पिच्छ मेरे समान लगाता है; किन्तु रहता यह भी दाऊदादाके ही अधिक निकट है।

बहिन नन्दी अंशुसे भी छोटी है। दुर्बल अंशुके ही समान और काञ्चन-गौर। तनिक चुलबुली। बहुत प्रिय है हम सबको। कुवला चाची उसे अभीसे पता नहीं क्या-क्या सिखा चुकी हैं। यह नन्हीं बालिका अबसे ही गृह कार्य, गृह सज्जामें व्यस्त रहती है और अवसर हुआ तो किसी भाभीका केश-शृंगार करने लगेगी।

बड़े चाचा कहते हैं—'पत्नीको अपनी पुत्रवधुओंसे अवकाश नहीं है और उसने अपनी पुत्रीको सहायिका बना लिया है। अच्छा है, मैं अपने ब्रजराज-कुमार और उनके गोष्ठकी देख-भालके लिए स्वतन्त्र हूँ। नीलमणिको गोष्ठ-रक्षक भी तो चाहिए। मुझे भी गायोंमें रहना प्रिय है। जिसे गाय प्रिय नहीं होंगी गोपाल उसके अंकमें क्यों बैठेगा।'

छोटे चाचा नन्दनजीतो मल्ल चाचा हैं। दोनों ताऊ, व्रजराजबाबा और बड़े चाचा भी उन्हें 'छोटे' कहते हैं; किन्तु ताइयाँ, मैया, रानी माँ और दूसरी सब गोपियाँ तथा गोप भी एवं छोटी चाची भी उन्हें मल्ल ही कहती हैं।

सब कहते हैं कि 'भद्र मल्लका बड़ा बेटा है।' पता नहीं क्यों कहते हैं। मैया तो कहती है—'भद्र मेरा है; किन्तु खड़े होने लगा तबसे महर इसे अपने समीप रखने लगे और यह उनका हो गया।'

मैंने मल्लचाचाको छूकर देखा है। उनके पेटमें भी अंगुली नहीं गड़ती। उनका पूरा शरीर कसकर बटी-रस्सीके समान गठीला और कठोर है। उनकी भुजाओं और जाँघोंमें तो जैसे पत्थरके कन्दुक भरे हैं। उनका पेट ही पिचका और पतला है; किन्तु वह भी गठीला है। उनका कर और उसकी अंगुलियाँ भी कठोर हैं।

मल्लचाचा सब गोपोंके सेनापति हैं। वे मल्लोंके तो शिक्षक हैं ही, धनुर्विद्याके भी पारंगत हैं। उनकी लाठी और धनुष दोनों भारी हैं। मैं उनकी लाठी उठा लेता हूँ, उठा तो उनका भारी खड्ग भी लेता हूँ; किन्तु वह मुझसे घुमाया नहीं जाता और उनकी गदा तो दूसरे बड़े गोप भी नहीं घुमा पाते। सुनता हूँ कि वह अष्ट-धातुसे बनी है।

मल्लचाचा देर तक अपनी मल्लशालामें उठक-बैठक करते हैं। उनके व्यायामोंमें मेरी कोई रुचि नहीं है। उनकी मल्लशाला जानेवाले उनके शरीरमें देर तक तैल-मर्दन करते रहते हैं, ऐसी धूमसे और बल लगाकर कि स्वयं स्वेदसे भींग जाते हैं। मल्लचाचाके स्थानपर दूसरा कोई हो तो उस विचारेका ही मर्दन हो जाय।

मल्लचाचाकी अपनी ही गोष्ठी है। उनसे मल्लविद्या या धनुर्विद्या सीखनेवाले उन्हें घेरे रहते हैं।

गेहुँआँ वर्ण, मध्यम आकार, घुँघराले छोटे केश और श्मश्रु। भ्रमर जैसे काले हैं मल्लचाचाके केश; किन्तु कभी ही वे तैलसिक्त होते हैं। अन्यथा धूलि-धूसर ही रहते हैं। मल्लचाचाके बड़े-बड़े नेत्र कुछ पाटलारुण हैं; किन्तु चाचा तनिक भी रूक्ष या क्रोधी नहीं हैं। दोनों ताऊ, व्रजराजबाबा, बड़ी चाची, सब ताई, मैया और रानी माँ तो मल्लचाचाको ऐसे पुकारते और स्नेह करते हैं, जैसे चाचा अभी बालक ही हैं। उन्हें कोई काम नहीं करने देता।

रानी माँ कहती हैं—मल्ल लालजी ! अपने इस सुकुमार नीलमणि-पर तो दया रखना। इसे मल्लशाला मत ले जाना। बल जाय तो उसे अपना शिष्य बना ले सकते हो।'

'रानी भाभी ! नीलमणि इतना सुकुमार है कि उसे तो मैं अङ्कमें उठाते भी डरता हूँ।' मल्लचाचा कहते हैं—'वह मेरे कन्धेपर कभी आ बैठता है तो लगता है कि, कोई पाटल-पुष्प वहाँ धरा हो; किन्तु तुम्हारा बल तो जन्मसे मल्लोंका भी महामल्ल है। मैं उसे क्या शिष्य बनाऊँगा। वह विनोदमें भी मेरी मल्लशालामें लेट जाता है तो मैं उसे भूमि नहीं छुड़ा पाता।'

दाऊदादाको मैंने उठक-बैठक करते तो कभी देखा नहीं। तब वह महामल्ल कैसे हो गया? उससे पूछूँगा कि इस व्यायामके बिना भी क्या मल्ल बना जा सकता है?

मल्लचाचा कहते हैं—'नीलमणिके सब भाई और सखा उसके समान ही दुर्बल और सुकुमार हैं। विशाल, वरूथप जैसे दो चार ठीक शरीरके हैं भी तो उनकी रुचि मेरी मल्लशालामें नहीं है। ये बालक अभीसे गोचारणके स्थानपर थोड़े दिन मेरी मल्लशाला आते तो कुछ दृढ़काय हो जाते।'

हममें कोई मल्ल नहीं बनना चाहता। हमारा दाऊदादा तो महामल्ल है ही। हम सब वनमें उसीसे थोड़ी बहुत मल्लविद्या सीख लेंगे। कन्हाईका साथ छोड़कर चाचाकी मल्लशालामें जाकर किसका मन लगेगा।

मल्लचाचाका शरीर जितना गठा और कठोर है, अतुलाचाची उतनी ही अधिक सुकुमार हैं। वे तो ऐसी हैं जैसे प्रफुल्ल-पाटल हों। पता नहीं क्यों सब उन्हें मेरी माँ कहते हैं। मैं तो उन्हें चाची कहता हूँ। उन्हें माँ तो कन्हाई कहता है।

'नीलमणि मेरा है।' कन्हाईको चाचीने अङ्कमें उठाकर भुजाओंमें भर लिया।

'यह कोई आज तेरा हुआ है।' मैयाने हँसकर कहा—'यह तो है ही तेरा। यह पहिली बार बोला तो इसने तुझे माँ कहा। पता नहीं कितना तेरे अञ्चलका पयपान किया है इसने।'

'आपके स्तनन्धय तो भद्र और तोक हैं।' चाचीने कहा—'यह नीलमणि मैं अपना ही रखूंगी।'

चाची पता नहीं कब अपने सदन जाती हैं। प्रातः से रात तक तो वे मैयाके समीप ही बनी रहती हैं। गोपियोंसे सुना है कि दिनमें वे थोड़ी देरको भी अपने सदन जाकर रुक जायँ तो मैया उन्हें बुलाने दासी भेज देती है। वह उपालम्भ देतीं है—'अतुला, तू वहाँ जाकर क्या करने लगी? तेरे कर श्रम करने योग्य हैं? तेरे जेठ सुनेंगे कि तू श्रमकर रही थी तो मुझे पता नहीं क्या-क्या कहेंगे। तू मुझे डाँटी जाती देखना चाहती है?'

'जीजी, तुम तो मुझे अपनी कोई सेवा करने नहीं देती हो' चाचीका उपालम्भ भी अनुचित नहीं है—'तुम्हारे मल्ल देवरकी तनिक सेवाकर दूँ तो भी डाँटती हो। अन्ततः गोप-कन्या पूजाके लिए बनी प्रतिमा तो नहीं है।'

'पूजाके लिए नहीं, प्यारके लिए बनी तो है।' मैया हँसती हैं—'मेरी देवकन्या जैसी देवरानी प्यार, स्नेह पानेके लिए है। यह श्रमके लिए नहीं है। इसे श्रम नहीं करने दिया जा सकता। तुझे मेरा आदेश मानना चाहिए।'

मैया छोटी चाचीको इतना लाड़ करती है कि उसकी पुत्रवधुएँ भी मैयाका इतना लाड़ कदाचित ही पाती हों। मैया तो छोटी चाचीको नववधूके समान सज्जित रखती है। उसके करोंमें मेहँदी और पैरोंमें अलक्तक म्लान ही नहीं होने देती।

'जीजी, हमारी पुत्रवधुएँ अब आ गयी हैं।' चाची अनेक बार मैयासे अनुरोध करती है, जब मैया उसे सम्मुख बैठाकर उसका केश-शृंगार करने लगती है। उसमें सुमन-ग्रन्थन करती है और हममें-से कोई आ जाता है और आनन्दसे ताली बजाकर हँसता है। चाची लज्जासे लाल हो जाती हैं। उस समय उनका अरुण-पद्ममुख दर्शन करने योग्य होता है।

'बहुएँ तो सब अभी निरी बालिकाएँ हैं।' मैया हँसकर झिड़क देती है। 'शिशु-शृंगार सज्जित भी किये ही जाते हैं; किन्तु शृंगार-शोभित हो ऐसी तो मेरी यह देवरानी अभी हुई है और इसे मैं अभीसे बुढ़िया नहीं होने दूँगी। सास बनी रहनेको हम सब बहुत हैं।'

छोटी चाचीको मैया न दधि-मन्थन करने देती और न दूधको ही अग्नितप्त करने देती। छोटी चाची बहुत मचलें तो वे मैयाकी केश सज्जा कर सकती हैं। उनका पुष्प-ग्रन्थन सचमुच इतना कलापूर्ण होता है कि उनकी पुत्रवधुएँ भी उनसे आग्रह पूर्वक यह कला सीखती हैं।

कन्हाई ही ऐसा चपल है कि यह दधि या नवनीत सना मुख अथवा कर छोटी चाचीके भी अञ्चलसे पोंछ देता है। चाची उल्लसित होकर कहती हैं—'अपने अंगमें लगी गोरज अथवा गोमयसे मेरे नीलमणिने ही मेरी साड़ी मलिन की है।'

कन्हाईको अंकमें लेकर चाची भाव-विभोर अब भी कहती हैं—'मेरा लाल शिशु था तब भी इसने अपनी इस मांके वस्त्र कभी गीले नहीं किये। दूसरी कोई तो इसे गोदमें उठाती थी तो अवश्य उसकी गोद पवित्र कर देता था। तब भी यह अपनी मांको पहिचानता था।'

'मेरा शरीर और कर इतना कठोर स्पर्श है कि मैं नीलमणिका स्पर्श करूँ तो उसके सुकुमार अंग व्यथित होंगे।' छोटे चाचा पत्नीसे अनेक बार कहते हैं—'वह चपल स्वयं कभी कन्धेपर आ बैठता है, तो भी मैं उसे छूते डरता हूँ। तुम उसे अङ्कमें लेती हो तो उसीसे मैं धन्य-धन्य हो जाता हूँ।'

छोटे चाचाका लड़का तोक कन्हाईसे तो छोटा है ही, सखाओंमें भी सबसे छोटा है। नाम तो इसका तोककृष्ण है; किन्तु सब तोक कहते हैं। रूप-रंग, आकृति सबमें जैसे कन्हाईकी दूसरी मूर्ति है। तनिक दूरसे देखनेपर कन्हाईका भ्रम हो जाता है। इसीसे इसका नाम तोककृष्ण है।

तोक कन्हाईके समान ही पीली कछनी, पीला पटुका रखता है और केशोंमें भी मयूर पिच्छ ही लगाता है। कन्हाईके साथ ही लगा रहता है और कन्हाईको तो यह छोटा भाई बहुत प्रिय है। कन्हाई इसकी कोई बात नहीं टालता। कन्हाईके साथ खड़े होनेपर उससे तनिक छोटा और तनिक दुबला लगता है।

भद्रके अन्तःपुरमें तो सब 'तोक लालजी' की रट लगाये रहती हैं। इसे पास बैठा लेंगी और इससे कन्हाईकी चर्चा सुनती रहेंगी। इसे भी

अपने 'कन्हाईदादा' की चर्चामें बड़ा उत्साह है। उसकी चेष्टाओंका अभिनय करके दिखलाता रहता है। लेकिन तोक बहुत भोला-सीधा है। नटखट नहीं है।

छोटे चाचाकी तीसरी सबसे छोटी सन्तान तोककी छोटी बहिन अजया। नाम तो इसका दूसरा था, पर इसे नहीं रुचा तो इसने कन्हाईसे ही अपना नाम बदलवा लिया। कन्हाई अजया कहने लगा तो यही नाम हो गया इसका।

छोटी, दुबली, पतले-दुबले मुखकी, गेहुँआ रंगकी यह घुँघराले काले केशकी बहिन कन्हाईको और हम सबको बहुत प्रिय है। कन्हाई वनसे भी इसके लिए कुछ न कुछ लाता रहता है। अपनी सब भाभियों, भाइयों और पूरे गोलोकका इतना स्नेह कदाचित किसी बालिकाको प्राप्त नहीं हुआ।

अजया तो ताली बजाती, खिलखिलाती नाचती-कूदती ही रहती है। सबके अन्तःपुर इसके अपने ही घर हैं। मैं तो हूँ ही मैयाका, किन्तु तोक और अजया भी मैयाकी गोदमें ही पले हैं। छोटी चाचीका अपना सदन तो नामके लिए है। वे मैयाके समीप न रहें तो मैया ही बुला भेजती है।

छोटे चाचा अपनी मल्लशालासे निकले तो मैयाके पास ही आते हैं। वे व्रजराजबाबाके सर्वथा अनुगामी; किन्तु कुछ कहना हो तो मैयासे ही कह पाते हैं।

दाऊदादा–

अनन्त, सङ्कर्षण, राम, बल, कन्हाईके समान दाऊदादाके भी जाने कितने नाम हैं; किन्तु लड़कियोंको कोई नाम रुचता ही नहीं। कन्हाईके और उसके भाइयों, सखाओंके अन्तःपुरोंकी सबकी सब उसे 'बड़े' कहती हैं। दाऊदादा कोई बड़ा है ? वह तो दोनों ताऊ, व्रजराजबाबा और दोनों चाचा तथा अनेक गोपोंसे छोटा है। उसके साथ खड़ा होनेपर तो विशाल उससे बड़ा ही लगता है। मुझसे तो वह केवल दो-ढाई महीने बड़ा है, यह माँ कहती हैं; किन्तु यह महीने-दिन बड़ा क्या होता है ? मैंने दादाके बराबर खड़े होकर, उससे सटकर मापकर देखा है, वह मुझसे चार अंगुल बड़ा है।

ये स्त्रियाँ 'बड़े-छोटे' कहनेकी ही अभ्यस्त होती हैं। बड़ा, पकौड़ी, पूड़ी बनाते-बनाते इन्हें वही नाम अच्छे लगते हैं। इन्होंने किसीका नाम पुआ या मोदक नहीं रखा, यही क्या कम है। वैसे ये सब अनेक बार मधुमङ्गलको 'मोदक पण्डित' कहकर चिढ़ाती तो हैं; किन्तु वह भी तो इनकी चुटियाको पूँछ कहता है।

दाऊदादा गोरा है। कैसा गोरा ? ठीक-ठीक कहना बनतो नहीं। श्वेत-गोरा; किन्तु दूध जैसा श्वेत नहीं। कमल नालमें-से एक तन्तु निकालें तो उसके समान चमकता, पारदर्शी-सा लगता चमकता गोरा। देखनेमें ऐसा चिकना कि लगता है उसके शरीरपर धूलि भी चिपक नहीं सकती। उसके शरीरपर हम सब वन-धातुओं और पुष्परसोंसे चित्राङ्कन करते हैं। उसके दर्पण जैसे शरीरमें अपना मुख देखा जा सकता है और सब रंग उसपर खिलते हैं। दादा कन्हाईके समान हिलता-डोलता तो है नहीं, स्थिर बैठा रहता है, अतः स्थिर होकर पूरे सुन्दर चित्र उसके अङ्गोंपर ही बनाये जा सकते हैं।

छोटे चाचा मल्ल हैं। उनका शरीर बँटी रस्सीके समान कठोर है और उनकी भुजाओं, जाँघों आदिकी माँस पेशियाँ उभड़ी, उठी, बहुत सुन्दर लगती हैं। वे कहते हैं—'बल तो साक्षात् बल है। ऐसा सुगठित,

साँचेमें ढलेके समान शरीर संसारमें दूसरा दुर्लभ है। मैंने कोई मल्ल इतना सुगठित नहीं देखा।'

चाचाका शरीर तो कठोर है; किन्तु दाऊदादाका शरीर कोमल है। कन्हाई तो जैसे माखनके लौंदे जैसा है। उतना सुकुमार तो पाटल-दल भी नहीं होता; किन्तु दाऊदादा अङ्कमाल दे अथवा उसे स्पर्श करो तो स्पर्श कोमल, सुखद ही लगता है। दादाके तो चरण भी अरुण और कोमल ही हैं।

'विशाल भाल, बड़े-बड़े नेत्र। कन्हाईके रतनारे नेत्रोंसे भी दादाके नेत्र तनिक अधिक अरुण हैं और लगता है कि उनमें स्नेह, कृपाकी धारा अजस्र झर रही है। लेकिन दादा किसीपर रुष्ट हो, कन्हाई जब उस गोप-बालक बने राक्षस (व्योम) को मारने लगा था व्रजमें, तब दादा वहाँ नहीं था; किन्तु किसी सखा या कन्हाईको कोई खिझाने लगे तो दादा तभी रुष्ट होता है। उस समय दादाका मुख ऐसा अरुण हो उठता है, जैसे प्रातः कालका उगता सूर्य। दादाके नेत्र अङ्गार हो जाते हैं; किन्तु रोष तो दादाको कदाचित क्षणार्धको आता है। अन्यथा उसे तो क्रोध करने जैसे आता ही नहीं।

मैया, गोपियाँ और सब बड़े गोप कहते हैं—'रामको रूठना नहीं चाहिए। वह रूठकर गुमसुम हो जाता है और फिर कोई कुछ करे, सिर झुकाये बैठा रहेगा। न सिर उठावेगा, न कहीं किसीकी ओर देखेगा, न कोई चेष्टा करेगा। तब केवल उसका छोटा भाई ही उसे मना सकता है।'

हम सबके सब तो उसके छोटे भाई हैं। हम सबका वह दादा है। हममें किसीने उसे कभी रूठा नहीं देखा। दादा तो अनन्त स्नेहमय है। उसे रूठना कहाँ आता है। हममें कोई चाहे जब, चाहे जिधरसे दौड़ता-कूदता आकर दादाके आगे, पीछे या पार्श्वसे उससे लिपट जाता है। चाहे जो पुष्प, वन-धातु, पल्लव या पिच्छसे दादाके अंग अथवा केश सजाता है। दादा तो किसीको रोकता नहीं। किसीकी कभी उपेक्षा नहीं करता।

सब सखा बिना संकोच केवल दादासे अपनी, अपने घरके किसीकी कोई बात कह सकते हैं। दादा सबकी सब बात सुनता है। सखाओंके परस्परके विवाद भी सुनता है। कन्हाई श्रीदामको खिझाता ही रहता है, श्रीदाम भी कन्हाईके नटखटपनका उपालम्भ दादासे ही देता है।

दादा अद्भुत है। कन्हाईके नटखटपनका उपालम्भ कभी कोई गोपकुमार, श्रीदाम या छोटे सखा मुझे भी सुनाते हैं तो कभी मुझे कन्हाईको तनिक झिड़कना भी पड़ता है; किन्तु दादा तो कन्हाईको या किसी सखाको न कभी डाँटता, न झिड़कता। वह तो जिसका दोष बतलाओ, उसे न बुलावेगा, न उससे कुछ पूछे कहेगा। अपने समीप आये सखाको अपने समीप बैठा लेगा। उसकी पीठ सहलावेगा, उसके केशोंके पुष्प या पिच्छ सम्हालेगा अथवा उसे कुछ खिलाने ही लगेगा। वह इतना प्यार देता है कि उसके समीप जाकर किसीके मनमें क्षोभ बचा रह ही नहीं सकता।

दादा नीली कछनी बाँधता है। नीला ही पटुका कन्धेपर रखता है। भद्र, श्रीदाम या सुबलसे दादाका पटुका कभी भी परिवर्तित हो सकता है। ये सब भी नीला पटुका ही रखते हैं और अनेक बार तो जान बूझकर दादाके कन्धेसे उसका पटुका उतारकर अपने कन्धेपर रख लेते हैं और अपना पटुका दादाके कन्धेपर सजा देते हैं। दादाको तो उसकी कोई वस्तु ले लो, इसमें कभी कुछ लगता ही नहीं।

दाऊदादाके केशोंमें कौन-सा पिच्छ लहरायेगा, इसका कुछ ठिकाना नहीं है। मयूर-पिच्छ, हंस-पिच्छ, तोतेके हरे पिच्छ अथवा अनेक धारियों वाले पिच्छ, इनमें कोई भी अथवा कई-कई रंगोंके पिच्छ लहरा सकते हैं। कन्हाई और दूसरे सखा जो पिच्छ दादाके केशोंमें लगा दें, वही लगा रहेगा। मैया और माँ तो सदा मयूर-पिच्छ ही लगाती हैं।

दाऊदादाके केश स्वर्णिम हैं, जैसे पीताभ रेशमके लच्छे हों। अत्यन्त कोमल तथा घुँघराले। दादाके कण्ठमें बड़ा-सा नीलमणि रहता है। दादाको वैदूर्य तथा नीलमणि जटित आभरण प्रिय हैं। वैसे उसके अङ्गपर सभी वर्णके रत्न एवं पुष्प सुशोभित होते हैं। सखा उसे किन पुष्पोंकी वैजयन्ती-माला पहिनावेंगे, यह सखाओंकी अपनी ही रुचिपर निर्भर है।

'दादा! तू क्या खायगा?' दादासे पूछ देखो।

'जो तू खिलावेगा।' दादाकी अपनी कोई रुचि ही नहीं है। वह उसी चावसे टेंटी अथवा आमलकी भी खालेगा, जिस प्रकर मोदक या मिश्री पड़ा नवनीत ग्रहण करता है। वह तो मुखमें हरीतिकी, कालीमिर्च, पिप्पली अथवा आर्द्र सुण्ठी भी देनेपर उसे चावसे ही ग्रहण करता है।

दादा केवल दक्षिण कर्णमें कुण्डल पहिनता है। वह वाम कर्णमें कुण्डल पहिनता ही नहीं। पूछनेपर बोला—'तुम्हें जो बार-बार कठिनाई होती है, वह मैं क्यों अपने लिए भी आमन्त्रित करूँ? कन्हाई न कन्धेपर सिर रखे बिना रह सकता और न वहाँ सिर रखकर शान्त-स्थिर रहेगा।'

कन्हाई दाऊदादाकी दक्षिण बाहुसे सटकर न कभी खड़ा होता, न बैठता। वह सदा दादाके वाम स्कन्धसे सटकर ही खड़ा होता या बैठता है और प्रायः स्कन्धपर सिर रख देता है। उसका स्वभाव है कि जिसके साथ सटकर खड़ा होगा अथवा बैठेगा, उसके कन्धेपर सिर रखकर उसके कानमें फुसफुसायेगा, हँसेगा, सिर हिलाता रहेगा। दूसरे किसीके तो दाहिने या वायें चाहे जब सटकर आ खड़ा होगा या बैठ जायगा। कुण्डल पहिना छोड़ो तो दोनों कानोंमें पहिनना छोड़ देना पड़ेगा और ऐसा करो तो कन्हाई अपने कुण्डल उतारकर पहिना देगा। सखाके कान कुण्डल रहित बने रहें, यह श्रीव्रजराज-तनय देख नहीं सकता।

एक कानमें कुण्डल पहिननेसे दाऊदादाको थोड़ी ही छुट्टी मिली है। उनके वाम स्कन्धपर सिर रखकर कन्हाई अपना सिर अनेक बार इतना हिलाता है कि उसका ही कुण्डल दादाके केशोंमें उलझ जाता है। कुण्डल उलझाकर भी यह हँसता और ताली बजाता है। किसीके केशमें किसीका कुण्डल उलझ जायगा तो किसी तीसरेको ही तो उसे सुलझानेको पुकारना पड़ेगा। कन्हाईको तो अपने साथ उलझाना ही आता है। यह तो यही स्मरण नहीं रखता कि इसके केशोंमें किसीका कुण्डल उलझे या इसका कुण्डल किसीके केशोंमें उलझे, इसे भी केश या कर्णपल्ली खिचनेसे कष्ट होगा।

दाऊदादाका लकुट भारी है। उसे कन्हाई उठा नहीं पाता। दादाका शंख भी भद्र ही बजा पाता है। वैसे दादा कभी कदाचित ही वनमें शंख या शृंग लाता है। दादा क्यों शंख या शृंग लावेगा, वह तो राजा है। बड़े गोप भी कहते हैं—'दाऊ व्रजका राजा है।'

हम सब गोपकुमार तो दादाको अपना राजा मानते ही हैं; किन्तु दादा है मौनी राजा। वह कभी किसीको कोई आदेश नहीं देता। दण्ड देना

तो दूर, झिड़कता भी नहीं। वह तो चुपचाप बैठा रहता है और सबको स्नेह देता है। उसके अंकमें शशक-गिलहरी तक बैठ जाती हैं। कपि-शिशु उसके कन्धेसे पटुका उतारकर उससे खेलते हैं।

गायें, बछड़े भी दादाको सिर या मुखसे ठेलकर उसे उठनेका आग्रह कर लेते हैं। उससे कोई कुछ करनेको कहे, कोई कुछ देनेको कहे तो दादाको अस्वीकार करना नहीं आता। वह तो सबकी कामना-वाञ्छा पूर्ण करनेके लिए ही है। कन्हाई भी किसीको कभी निराश नहीं करता; किन्तु सबको पहिले अंगूठा नचाकर चिढ़ा अवश्य देता है। लेकिन दादा तो किसीको चिढ़ाता नहीं। दादासे जो मांगो, जो करनेको कहो, उसीको 'हाँ' कर देता है।

कदाचित ही कभी दादा किसीको कुछ करनेको कहता है। जिसे कुछ कह दे, उसका परम सौभाग्य। निश्चित रूपसे दादा केवल दो कारणसे किसीको कुछ करनेको कह सकता है—१—कन्हाई उससे कुछ कराना चाहता है और स्वयं संकोचीनाथ बन गया है। दादासे उसने कहनेको कहा है। उसे करनेमें करनेवालेका परमहित है और उसका ध्यान उस ओर नहीं है, स्वयं ध्यान जानेकी सम्भावना नहीं है। २—उस कामको करनेसे करनेवालेको कन्हाईकी प्रसन्नता तथा सान्निध्य मिलनेवाला है। दादा स्वतः कृपा करके उसे यह सौभाग्य देता है।

लेकिन ऐसा सौभाग्य भी श्रम करके, कष्ट उठाकर मिलनेवाला हो तो दादा नहीं देगा। दादा किसीको क्लेश जैसा कुछ दे नहीं सकता।

लोग कहते हैं—'दादा, हमारे यहाँका नहीं है। वह राजकुमार है। मथुराका है।'

पता नहीं लोगोंको ऐसी गप्पें कैसे सूझती हैं। दाऊदादा हमारा है। हमारे यहाँका है। हमारे गोलोकका ही एक कोना मथुरा है तो सही; किन्तु मैं वहाँ नहीं जाता। वह मुझे अच्छा नहीं लगता। कन्हाईको भी अच्छा नहीं लगेगा। दाऊदादा कभी वहाँ गया होगा; किन्तु सम्भवतः उसे भी

अच्छा नहीं लगा। इसीसे फिर नहीं गया। अब नहीं जायगा, यह मैं जानता हूँ। दाऊदादा कन्हाईको और हम सबको छोड़कर अकेले जा ही नहीं सकता। कन्हाई दादाके बिना नहीं रह सकता, फिर दादा कैसे जायगा ?

लोग तो माँ रोहिणीको भी मथुराकी कहते हैं। उनको सब रानी कहते हैं, यह तो ठीक है। वे रानी माँ हैं, किन्तु व्रजेश्वर बाबा या मैया उन्हें मथुरा जाने देंगी ?

लोगोंके कहनेका कुछ ठिकाना नहीं है। लोग तो कहते हैं कि दाऊ रानी माँका है, कन्हाई मैयाका है और मैं छोटी चाचीका हूँ। ऐसा बटवारा किसीने किया भी हो तो वह पागल होगा। दाऊदादा, कन्हाई और मैं भी माँके हैं और मैयाके भी हैं। हम तीनोंने माँ और मैया दोनोंका दूध पिया है। अब भी हममें कोई दोनोंमें-से किसीकी गोदमें बैठ जाता है।

छोटी चाचीका तो तोक है। मुझे बहुत बुरा लगा जब एक गोपीने मुझे छोटी चाचीका कहा। मैंने माँ और मैया दोनोंसे पूछा। दोनोंने ही तो कहा कि हम तीनों उन दोनोंके हैं।

छोटी चाची कन्हाईको अपना बतलाती है। वह तो कहती है मैयासे— 'भद्र और तोक दोनों तुम्हारे; किन्तु नीलमणि मेरा है।'

कन्हाई भी छोटी चाचीको माँ कहता है। तब कन्हाई रानी माँ, मैया और छोटी चाचीका भी होगा। कन्हाई बहुत चञ्चल है। यह किसीका भी बन जा सकता है। लेकिन दाऊदादा चञ्चल नहीं है। दादाको चाहे जो अपना नहीं बना ले सकता; किन्तु दादा अतिशय उदार है। जो कोई उसका बनना चाहेगा, दादा उसे अस्वीकार नहीं कर सकता।

दादा राजकुमार क्यों होने लगा। वह तो राजा है, हमारे व्रजका राजा। व्रजराजबाबा भी तो यही कहते हैं। राजकुमार और युवराज तो कन्हाई है। कन्हाई व्रजयुवराज है। यह तो बहुत सीधी बात है।

दादा राजा है, इसलिए हम सब उसका श्रृङ्गार करते हैं। वह बैठा रहता है चुपचाप और सबकी रक्षा करता है। वह तो केवल देखकर ही

सबकी रक्षा कर सकता है—करता है। वह बल है, उससे झगड़ा करने अथवा उसके रहते उसके सखाओंको छेड़नेका साहस कौन कर सकता है? सब जानते हैं कि दादा खेलमें भी जिस शिलापर घूँसा पटक देता है, वह चूर-चूर हो जाती है।

'दादा, उठ !' कोई सखा कभी दादाका हाथ पकड़कर कह सकता है। दादा इतना सीधा है कि कभी नहीं पूछेगा—'क्या काम है।'

'चल !' दादा उठ खड़ा होगा तो उठानेवाला सखा इतना कहकर चल देगा। कहाँ जाना है, क्या करना है, दादा नहीं पूछेगा।

'मुझे वह फल चाहिए।' सखा किसी वृक्षके नीचे खड़े होकर ऊँचाईपर लगे कोई फल दिखा दे सकता है।

कोई फल हो, किसी वृक्षका हो, कितनी भी ऊँचाईपर हो, कितना भी दुर्लभ हो, दाऊदादासे देनेको कहा तो वह हाथमें आया ही समझो।

कन्हाई तो नटखट है। उससे कुछ माँगो तो दे ही देगा, इसका भरोसा नहीं है। फल पका न हो, खट्टा, कड़वा अथवा अखाद्य हो तो कन्हाई अँगूठा दिखाकर हँसेगा। ऐसा फल कभी देगा नहीं। अनेक बार तो खेलनेके लिए भी नहीं देता; किन्तु दाऊदादको अस्वीकार करना ही नहीं आता। दादाको कहाँ वृक्षपर चढ़कर फल तोड़ना है। वृक्ष कितना भी मोटा और सुदृढ़ हो, दादा उसके तनेको झकझोर देगा और इतनेपर भी वह वृक्ष अपना फल न गिरा दे तो उस वृक्षको ही गिरा देगा।

फल लेकर खाओ या खेलो उससे; किन्तु कन्हाईको उसे देना चाहो तो दादा एक बार अवश्य उस फलको देख लेगा। भले दूरसे ही देख ले। हममें किसीको अपने लिए तो कभी कुछ चाहिए नहीं। किसी गोपकुमारने कुछ पाना चाहा है तो निश्चय वह समझता है कि कन्हाईको वह फल या वस्तु प्रिय लगेगी।

कन्हाई तो अद्‌भुत है। वह फल या, मोदक भी देखकर मुख बिचका ले सकता है—'सड़ा है' अथवा 'खट्टा है' किन्तु हाथसे झपट भी लेगा और

तब कहेगा—'यह तेरे योग्य नहीं है। यह तेरा मुख कड़वा कर देगा। तुझे रुग्ण करेगा। मैं ही इसे खाये लेता हूँ।'

जैसे उसको खाया तो जाना ही चाहिए। यहीं हम सबको सावधान रहना पड़ता है। कन्हाईको न गुणावगुणका पता, न स्वादका ज्ञान। कोई चावसे उसके लिए लाया है तो वह कन्हाईको प्रिय ही लगेगा। अतः आवश्यक है कि दादाकी ओर एक बार देख लिया जाय। बिना देखे या पूछे तो दादा भी मौनी बाबा बना रहता है; किन्तु इसकी ओर देख लो तो संकेतसे अथवा समझाकर भी पदार्थ कन्हाईको देने योग्य है या नहीं; बता देगा।

दादा इतना सीधा है कि खेलमें पराजित किसी भी सखाके स्थानपर दाव देनेको उद्यत हो जाता है। किसीको तनिक भी खिन्न मुख देखे तो उसे पुचकारने लगता है। पता नहीं ऐसे सीधे दयाधाम दादासे लड़कियाँ क्यों घबड़ाती हैं। दादा तो कन्हाईके समान उनमें-से किसीको चिढ़ाता या छेड़ता नहीं; किन्तु दादाको देखते ही सबकी सब भाग खड़ी होती हैं और भागनेका अवसर न हो तो छूनेपर इन्द्रवधूटीके समान सिकुड़-सिमटकर, सिर-झुकाकर ऐसी गुमसुम खड़ी हो जायँगी कि किसीकी एक अंगुली तक भी नहीं हिलेगी। कोई कुछ कहे, पूछे तो मौनी बनी रहेंगी। दादा ही कुछ पूछ ले तो उनमें कोई ऐसे धीरेसे बोलेगी कि पता लगाना कठिन होगा कि उनमें-से कौन बोल रही है। लगेगा कि विचारीके गलेमें कोई भारी कष्ट है। उसे बोलनेमें बहुत परिश्रम हो रहा है। अतः वह एक दो शब्द ही बोल रही है। अधिक तो सिर ही हिलावेगी।

एक बात तो है कि दादाको किस बातपर रोष आवेगा और किस बातकी यह उपेक्षाकर देगा, इसका कहीं कोई ठिकाना नहीं है। कभी तो कन्हाई ढेरों दोष-दुर्गुण किसीके गिनाता रहे, मुस्करा देगा या उपेक्षाकर देगा और कभी कन्हाई ही नहीं, हम सबमें किसीके अंगपर बनी रेखाको भी देखकर इसके नेत्र अंगार उगलने लगेंगे—'तुझे किसने यह क्षत पहुँचाया ?'

अपनोंपर दादाको कभी रोष नहीं आता। अपने आश्रितके दोष इसे दोष ही नहीं जान पड़ते। यह तो अपनोंके गुण ही गुण देखता है और जो

इसे अपना बनाना चाहे, उसीका अपना। दादा किसीको अस्वीकार भी कर सकता है, यह बात सोची ही नहीं जा सकती।

वैसे दादा चुपचाप बैठा रहनेवाला, अपने आपमें आनन्द मग्न है। लेकिन पुकारनेपर बोले भले नहीं, वह बोलता तो कन्हाईके भी पुकारनेपर नहीं है; किन्तु पुकारनेवालेको देख अवश्य लेता है। इसका दृष्टि उठाकर देख लेना ही पर्याप्तसे भी बहुत अधिक है।

सर्वाधार, सर्वगुरु, जीवाचार्य, पता नहीं ऋषि-मुनि क्या-क्या कहते हैं दादाको। ये दाढ़ी-जटावाले तो नटखट कन्हाईको भी पता नहीं क्या-क्या कहते हैं, इनकी बात तो बड़े गोपोंकी भी समझमें नहीं आती। हम सबके लिए तो इतना ही बहुत है कि दाऊदादा है—हमारा दादा।

सखा—

असंख्य सखा हैं कन्हाईके। उनकी गणना तो कोई ऋषि-मुनि भी नहीं कर सकता। सब वर्णके और, लम्बे-ठिगने, मोटे-पतले सब प्रकारके। सब सुन्दर, सब कमल-नयन और सब आनन्दी स्वभाव। कोई तनिक गम्भीर, कोई हँसोड़; किन्तु मुख लटकाये रहनेवाला कोई नहीं।

इन सखाओंके तीन वर्ग हैं। कुछ कन्हाईसे आयुमें बड़े। इनमें किञ्चित वात्सल्य मिश्रित सख्य स्नेह है। ये कृष्णको तनिक भी श्रम करने नहीं देना चाहते। गो-चारण प्रायः यही वर्ग करता है।

दूसरे समवयस्क आयुमें भले बड़े या सम हों, कन्हाईका इनसे समताका व्यवहार है। इन्हें प्रिय नर्म सखा भी कहा जाता है। कन्हाई अपनी कोई भी अन्तरंग बात इनसे नहीं छिपाता और ये उसकी अन्तरंग क्रीड़ामें भी सहायता करते हैं।

तीसरा वर्ग आयुमें कन्हाईसे छोटोंका है। इनपर कन्हाईका अतिशय स्नेह है और ये श्यामको सुख, विश्राम देने, उसके साथ क्रीड़ामें ही लगे रहते हैं।

दाऊ और कन्हाई तो अभिन्न हैं। इनके शरीर दो हैं, प्राण (यदि हमारे यहाँ शरीर-प्राणमें भेद करना ही हो तो—यद्यपि ऐसा कोई भेद ही यहाँ नहीं है।) एक ही हैं। अतः सखा-मण्डलके मध्य तो दोनों एक जैसे हैं। कोई दाऊके साथ खेलमें रहता है, कोई कन्हाईके साथ।

जैसे श्रीकीर्तिकुमारीकी सखियोंमें आठ प्रधान हैं, वैसे ही कन्हाईके सखा-मण्डलमें द्वादश प्रमुख हैं। बड़ी आयुवालोंमें चार—१. अर्जुन २-विशाल ३-ऋषभ ४-वरूथप।

इनमेंसे अर्जुन, विशाल और ऋषभ तो भाई हैं। ताऊ या चाचाके पुत्र। इनका वर्णन उनके पिताओंके वर्णनमें आ चुका। वरूथप गोपनायकका पुत्र है। यह दोहरे, तनिक चौड़े शरीरका, सबल, तनिक श्याम-वर्ण है

और सतरंगी पगड़ी बांधता है। गोचारणका यही मुख्य सञ्चालक है। गायें किधर, कहाँ जायेंगी, कहाँ जल पियेंगी, कहाँ वनमें ब्यारू आवे, यही निर्णय करता है। यह दूसरी बात है कि चपल कन्हाई अपने मनके अनुसार ही चलता है और वरूथपकी योजना कदाचित ही बनी रह पाती है।

प्रिय नर्म सखाओंमें—मधुमङ्गल, भद्रसेन, श्रीदाम और सुबल प्रमुख हैं। जैसे बड़ी आयुके सखाओंमें सब उस वर्गके प्रमुख चारमें-से किसी न किसीके अनुगत रहते हैं, वैसे ही इस वर्गके सखा इनमें-से तीनके अनुगत रहते हैं, क्योंकि मधुमङ्गल तो अवधूत है। वह किसीको अनुगत नहीं बनाता।

श्रीदाम और सुबल श्रीवृषभानुबाबाके कुमार हैं। बरसानेके सब सखा इन्हीं दोनोंमें-से किसीके अनुगत रहते हैं। भद्रसेनको तो सब सखा अपना सेनापति कहते हैं। सखाओंके पूरे मण्डलको भद्र ही सम्हालता है, यह कहा जाता है; किन्तु सच यह है कि भद्रको केवल कन्हाईको सम्हालना पड़ता है। नन्द-नन्दन इतना सुकुमार है और भोला है कि इसे अपनी क्षुधा, पिपासा, श्रान्तिका पता ही नहीं लगता। इतना नटखट है कि कब क्या ऊधम करेगा, कुछ ठिकाना नहीं और दाऊदादाके अतिरिक्त केवल भद्रकी बात ही कुछ मानता है। अतः भद्र इसको ही पल-पल सम्हालता है और इस सम्हालमें बड़े-छोटे चाहे जिस सखाको, चाहे जब, चाहे जो आदेश बिना हिचक देता रहता है। कदाचित इस आदेश देते रहनेके कारण ही सब भद्रको अपना सेनापति कहते हैं। सब उसका अनुशासन मानते हैं। भद्र भाई है, तनिक बड़ा भाई। भले नन्दन चाचाका ज्येष्ठ पुत्र इसे सब कहें, कन्हाईका सहोदर अग्रज अपनेको मानता है और बाबा—मैयाने कभी इसे अस्वीकार नहीं किया।

मधुमङ्गलकी आयु कोई नहीं जानता। सब कहते हैं कि वह योगेश्वर है। आयु उसके वशमें है। वह दाऊदादासे भी बड़ा है; किन्तु कन्हाईसे तनिक ही बड़ा लगता है और हमारे यहाँ तो कोई घटता-बढ़ता नहीं। सबकी नित्य स्थिर आयु है। जैसे कन्हाई सत्रह वर्षका है। भद्र उससे दस महीने बड़ा और दाऊदादा भद्रसे डेढ़ महीने बड़ा। मधुमङ्गल भद्रके बराबर लगता है।

कभी-कभी महर्षि शाण्डिल्यके साथ मधुमङ्गल वेद-मन्त्र बोलने लगता है और पण्डित बन जाता है; किन्तु हम सब तो इसे पोंगा पण्डित ही मानते हैं।

कर्पूर-गौर वर्ण, लम्बामुख, लम्बोदर, किञ्चित् स्थूलकाय मधुमङ्गल अत्यन्त विनोदी है। वृद्धा, युवती, बालिका सभीको समान रूपसे माँ कहता है। कोई चिढ़े तो कह देगा—'क्या हुआ, अभी नहीं है तो कुछ दिन पीछे माँ बन जायगी।'

ऐसा अवधूत कि कभी मोटा यज्ञोपवीत पहिने दीखेगा और कभी उसे उतार कर कन्हाई या किसीको भी पहिना देगा। मस्तकपर तिलक करता तो है; किन्तु इसके पेट, पीठ, भुजा—कपोलपर कन्हाई और दूसरे सब चाहे जो चित्रांकन कर लेते हैं।

मोदक-प्रिय मधुमङ्गल न गाय पालता, न चराता। यह तो कन्हाईके साथ रहनेके लिए वन आता है। कम ही दौड़-धूप अथवा क्रीड़ाकी प्रतिद्वन्दितामें सम्मिलित होता है। बैठा रहेगा या घासपर लेट जायगा।

ब्राह्मण होनेसे अग्रभोजी है और अपने इस अधिकारकी बार-बार दुहाई देता है; किन्तु कहता है—'दधि-नवनीत तथा मिष्ठान्नमें उच्छिष्ट दोष नहीं होता।' कन्हाईको और हम सबको इसे डटकर खिलानेमें आनन्द आता है। यह हमारा विदूषक है।

श्रीदाम वृषभानुबाबाका ज्येष्ठ कुमार है। वृषभानुपुरका युवराज। कन्हाईसे आयुमें कुछ बड़ा है; किन्तु शरीरसे सुकुमार। पाटल-गौर वर्ण यह अपनी बहिनके समान ही नील वस्त्र ही धारण करता है। अपने केशोंमें मयूर-पिच्छ लगाता है।

श्रीदाम बहुत सरल, भोला और स्नेहमय है। कन्हाई इसे खिझाता ही रहता है। खिझानेपर यह भी कन्हाईसे उलझ जाता है। जब दोनों झगड़ने लगते हैं तो भद्र श्रीदामको समझाकर शान्तकर लेता है।

श्रीदामकी दुहरी उलझन है। यह कहता है—'यदि बाबाको पता लगे कि मैं कन्हाईसे लड़ आया तो मुझे भवनमें प्रवेश ही नहीं करने देंगे। मेरी बहिन तो मेरा मुख ही नहीं देखेगी।'

बहिन इसे प्राणोंसे अधिक प्रिय है; किन्तु कन्हाई इतना नटखट है कि इसे छेड़कर, खिझाकर लड़े बिना मानता नहीं।

श्रीदामका छोटा भाई सुबल लोगोंके कहनेके अनुसार श्रीराधाके साथ युग्मज उत्पन्न हुआ है। प्रायः युग्मज बालक सर्वथा एक आकृतिके होते हैं। सुबल तनिक दूरसे देखनेपर लड़की लगता है। कहते हैं कि अपनी बहिनसे इस प्रकार समान आकार है कि अनेक बार कीर्ति मैया तकको लाला-लालीमें भ्रम हो जाता है।

सुबल कन्हाईसे प्रायः लगा ही रहता है। कन्हाई इसे वाम भागसे सटाये खड़ा होता है और चलता है। यह भी कन्हाईके कानमें अपनी बहिनकी चर्चा फुसफुसाता रहता है। कन्हाई इससे बहुत स्नेह करता है; किन्तु छीका झपटना हो तो श्रीदामका छीका झपटता है।

भद्र कहता है—'लली तो संकोचकी मूर्ति है। न उसे बोलना आता, न सिर उठाकर देखना। कन्हाईके साथ उसे देखना हो तो सुबलको देख लो।'

बरसानेके सखाओंमें जो आयुमें बड़े भी हैं, वे भी श्रीदामको ही अपना अग्रणी मानते हैं और प्रतिद्वन्द्वात्मक खेलोंमें ये सब दाऊदादाके साथ रहते हैं। जो समवयस्क या अल्पवय हैं, वे सुबलको अपना यूथप मानते हैं। ये सब कन्हाईके साथ लगे रहते हैं।

कन्हाई बरसानेके सखाओंमें कदाचित ही किसीको चिढ़ाता—खिझाता है। केवल श्रीदामसे उलझता है। श्रीदामके यूथके किसी अन्य सखाको भी चिढ़ाता नहीं। श्रीदाम-कृष्णके झगड़ेमें बरसानेका कोई सखा नहीं बोलता। श्रीदामका सगा भाई सुबल तक ऐसे विवादके अवसरपर तटस्थ होकर दूर जा खड़ा होता है। कन्हाईको तो किसीकी सहायता अपेक्षित नहीं। यह नटखट सबसे अकेले उलझकर सबको चिढ़ा दे सकता है और श्रीदामको यदि वह दाऊदादासे उपालम्भ दे तो दादासे स्नेह मिलता है अथवा भद्र उसे पुचकारता, समझाता है।

छोटे सखाओंके वर्गमें भी चार प्रधान हैं। १-तेजस्वी, २-अंशु, ३-देवप्रस्थ और ४-तोककृष्ण। ये चारो ही ताऊ या चाचाके पुत्र, कन्हाईके भाई हैं। सभी सखाओंके अन्तःपुर इनके स्वागतको उत्सुक रहते हैं।

जहाँ तक अन्तःपुरोंका प्रश्न है, सर्वत्र अबाध प्रवेश मधुमङ्गलका है। उसे सबको 'माँ' कहना है और जहाँ जायगा, इस ब्राह्मणका सत्कार तो होगा ही। इसे नींद आवे तो कहीं भी विश्राम करनेको लेट जायगा। किसीको कह देगा—'माँ, मैं यहीं शयन करूँगा। झटपट मेरी शैय्या बिछा।' इसे न किसीसे कोई संकोच है और न इससे किसीको कोई संकोच होता।

छोटे सखाओंके वर्गको छोड़ दें तो शेष सबके सब बहुत अधिक संकोची हैं। कदाचित ही कोई किसी दूसरे, अपनेसे बड़े सखाके अन्तःपुरमें प्रयोजन विशेषसे जाता है और वहाँ जाकर भी भाभियाँ भले परिहास कर लें, वह तो जैसे विनय की मूर्ति बन जाता है।

यही सखा कन्हाईके साथ होनेपर परम-विनोदी और ऊधमी बन जाते हैं और किसीको भी चिढ़ाने, मटकनेमें कन्हाईसे भी आगे बढ़ लगने लगते हैं।

इस बातके अपवाद भी हैं। दाऊदादा कभी चपल नहीं बनता। उससे कोई परिहास भी नहीं करती। रंगोत्सवमें भी वह सम्मिलित नहीं होता। उसे तो सखा ही रंग-स्नात करते हैं।

भद्र रंगोत्सवमें सम्मिलित भी हो जाय—उसे कन्हाई बलात् सम्मिलित कर लेता है, तो भी किसीपर रंग नहीं डालेगा। कोई भाभी उसपर रंग उड़ेल दे वह एक मुट्ठी कुंकुम उसके चरणोंपर डाल देगा। अतः उससे परिहास भी कोई नहीं करती।

भद्रकी भी एक पत्नी बरसानेकी है। श्रीकीर्तिकुमारीकी छोटी बहिन ही है; किन्तु भद्रके लिए तो बरसाना जैसे अप्रवेश्य नगर है। वह वहाँ जानेका नाम लेते ही भाग खड़ा होता है।

श्रीदाम और सुबलके लिए तो किसी सखाके यहाँ प्रवेशपर कोई प्रतिबन्ध नहीं; किन्तु दोनों अत्यन्त संकोची हैं। यूथप ही संकोची होंगे तो उनके यूथके सखा कैसे चंचल बनेंगे। अपना संकोच छिपानेकी दोनोंकी अपनी पद्धति है—'हम किसीके भवन नहीं जाते। दूसरोंको हमारी पौरिपर आना चाहिए। हम सत्कार करनेवाले हैं। सत्कार हम क्यों किसीसे लें?'

सच बात तो यह है कि सबके अन्तःपुरोंमें कन्हाई सदा बना ही रहता है। कभी-अधिकांश अकेला और कभी कदाचित कुछ सखाओंके साथ। इस मयूर-मुकुटीका सान्निध्य प्राप्त रहे तो किसीको दूसरा कोई या कुछ स्मरण आ ही नहीं सकता।

केवल वन-क्रीड़ाके समय सखा साथ होते हैं और उनके परस्पर विनोद चलते हैं। सख्यका परिपाक ही वन क्रीड़ामें है। वनमें गो-चारणके निमित्त जाकर ही सब सखा एक साथ मिल एवं खेल पाते हैं। कन्हाईका उन्मुक्त साहचर्य वनमें ही सुगम होता है। जैसे वात्सल्यकी प्रतिष्ठाका प्रधान पीठ नन्द-सदन है और माधुर्यका पूर्ण परिपाक मन्दिर निभृत-निकुञ्ज है, सख्यके उन्मुक्त विकासकी भूमि वन है।

असंख्य सखा। अपने वर्गमें अपने शील-स्वभावके अनुसार अपने यूथ नायकके संकेतोंका अनुगमन करते सबको श्रीकृष्णकी सेवा और इस व्रज-युवराजके सान्निध्यका सुअवसर प्राप्त होता रहता है।

सखाओंमें आयु अथवा गुणादिके कारण, वंशके कारण भी कोई बड़े-छोटेका भेद नहीं है। वैसे तो सभी अपनेसे बड़ेको दादा कह लेते हैं; किन्तु प्रायः नाम लेकर ही एक दूसरेको सम्बोधित करते हैं। किसीको 'दादा' भी कहेंगे तो उसका नाम साथ लगाकर। केवल 'दादा' तो दाऊदादा है।

सब एक दूसरेको, बड़ोंको भी तू ही कहते हैं। ताऊ, बाबा, चाचा सबको 'तू' कहनेका ही सबको अभ्यास है। अवश्य ही ताऊ, चाचा आदि बालकोंको 'तुम' प्रायः कहते हैं।

सखा यदि सखाको 'तुम' कहता है तो इसका अर्थ है कि वह रुष्ट है अथवा व्यंगकर रहा है। उपालम्भ भी दे रहा हो सकता है।

महर्षि शाण्डिल्यको, विप्र-वर्गको बड़े गोप जैसे 'भगवन्' कहते हैं, वैसे ही 'आप' भी कहते हैं। ये जटा-दाढ़ीवाले ऋषि-मुनि बहुत अटपटे होते हैं। पता नहीं ये सबसे सदा रूठे रहते हैं-या इन्हें 'तू' कहना आता ही नहीं। ये तो दाऊदादाको ही नहीं, कन्हाईको और सखाओंमें जो इन्हें मिल जाय उसीको 'आप' कहने लगते हैं। इसीसे इनमें-से कोई मिल ही जाय तो सखा भी प्रणाम करके झटपट भाग खड़े होना पसन्द करते हैं। केवल कन्हाई

इनकी अबूझ पहेली जैसी बातें सुनता रहता है। सम्भवतः इसलिए सुनता रहता है; क्योंकि उन जटावाले बाबा लोगोंकी कोई बात इसकी समझमें ही नहीं आती।

'तू उस बाबाकी क्या बात सुन रहा था?' भद्रने एक बार पूछ लिया।

'वह बाबा क्या बोलता था, मुझे तो पता नहीं। तू जानता है?' कन्हाई बोला—'वह बोल रहा था तो उसकी हिलती दाढ़ी मुझे बहुत अच्छी लग रही थी। मैं तो उसकी दाढ़ी देख रहा था।'

बेचारा बाबा समझता होगा कि उसकी सब स्तुति यह नन्हा नन्दलाल समझता ही होगा; किन्तु एक बात अवश्य है कि इसकी श्रवण-शक्ति बहुत तीव्र है। बहुत दूरसे, धीरेसे भी कोई सखा कहे 'कनूं!' तो यह सुन लेता है और झट दौड़ पड़ता है।

कन्हाई सखाओंसे झगड़ सकता है और सखा इससे कुछ क्षणको रूठ सकते हैं; किन्तु इसे न सखाओंसे रूठना आता, न उनके बिना रह सकता। सखाके मान-भंगकी तो बात ही इसे सह्य नहीं। सखाओंका जीवन-प्राण भी तो यही है।

बरसाना—

अपरिचित सर्वथा नहीं और अल्प परिचित भी नहीं; किन्तु भद्रके लिए बरसाना सुपरिचित भी नहीं कहा जा सकता। वह बरसाने जानेमें बहुत अधिक संकोच करता है। उसे स्मरण नहीं कि वह कभी वहाँ गया भी है। लेकिन जब उसकी एक पत्नी वहाँ की है तो यह कैसे हो सकता है कि वह वहाँ गया ही न हो।

'तेरा विवाह कब हुआ था ?' भद्रने कन्हाईसे ही एक बार पूछा। जहाँ कालकी गति नहीं, जहाँ नित्य दाम्पत्य है, वहाँ विवाह कब और पत्नी किसकी कन्या, यह प्रश्न ही अटपटा है। लेकिन कन्हाई है ही ऐसा अटपटा कि उसमें अनेक असंगतायें सुसंगत बनी रहती हैं।

'जब तेरा विवाह हुआ था।' कन्हाई कम ही सीधा उत्तर देता है। कहने लगा—'मैं भाभीसे कहूँगा कि तू अब यह भी भूल गया कि उससे तेरा विवाह भी हुआ था।'

अब ऐसे नटखटसे कुछ पूछनेसे लाभ ? लेकिन बात सच है कि विवाहकी एक अस्पष्ट स्वप्न जैसी ही कल्पना यहाँ होती है।

इतना होनेपर भी वृषभानु बाबा और कीर्ति मैयाका ही नहीं, बाबाके पूरे परिवारका असीम वात्सल्य तो विस्मृत नहीं किया जा सकता।

सुबल और श्रीदाम बार-बार आग्रह करते हैं कि वह उनके साथ उनके घर चले। उनके बाबा मैया बड़े आग्रहसे बुलाते हैं। अनेक बहाने करके इन आग्रहोंको रोज-रोज टालना पड़ता है; क्योंकि गो-चारणके लिए जाने और वनसे लौटनेका मार्ग कन्हाईको वृषभानु बाबाकी पौरिके सम्मुख होकर ही मिलता है। दूसरा मार्ग भी सम्भव है, जैसे वह जानता ही नहीं।

कन्हाईके नित्य निकुञ्जकी तो चर्चा ही भद्रको प्रिय नहीं लगती। वह बरसाने भी इसी संकोचसे नहीं जा पाता कि ललीकी कोई सखी मिल गयी तो वह भद्रको बाबाके अन्तःपुर तक ले गये बिना मानेगी ही नहीं।

वहाँ जाय तो लली भले सम्मुख न आवे, उसके स्वागत सत्कारमें व्यस्त होकर थक जायगी और वह क्या थकाने योग्य है ?

श्रीराधाको भद्र भी दाऊके समान लली ही कहता है और उनकी सहेलियोंको लाली कहता है। लली और उसकी सहेलियाँ उसका दाऊसे कम सम्मान, संकोच नहीं करतीं। अवश्य श्रीराधाकी सहेलियाँ उससे बोल लेती हैं। भले बहुत धीरे स्वरमें और दो-तीन शब्द ही बोलकर और सिर हिलाकर काम चलावें।

'लली को तो बोलना ही नहीं आता।' भद्र कहता है—'वह कभी कहीं मार्गमें मिल भी जाय तो सिर, मुख ही नहीं, पैरके नख-तक ढककर इन्द्रवधूटीके समान सिकुड़कर बैठ जायगी और कुछ पूछो तो सिर भी नहीं हिलावेगी। केवल किसी सखीके पीछे खिसककर छिप जायगी और उसके सिरसे सिर सटा लेगी। यह भी पता नहीं लगेगा कि उस सखीके कानमें भी फुसफुसाती है। उसकी ओरसे वह सखी ही बहुत धीरे दो-तीन शब्द बोलेगी। लली तो केवल भूमिमें अपना ढँका सिर रखना जानती है। उसे ऐसे संकोचमें डालना बुरी बात है।'

'ये लड़कियाँ बहुत हठी होती हैं।' भद्र कहता है—'इनके मस्तकमें तो बुद्धि होती नहीं। बुद्धि तो इनके सिरसे बाहर इनकी चुटियामें लटकती रहती है। इनकी चोटी खींच दो तो इनकी बुद्धि इनके सिरमें चली जाती है और तब ये बुद्धिमान बन जाती हैं; किन्तु किसी लड़कीकी चोटी खींचनेका काम ठीक-ठीक कन्हाईको ही आता है। यह काम अपने वशका नहीं और ललीकी चोटी खींची भी कैसे जा सकती है ?'

ये हठी लड़कियाँ कान, सिर, मुख ढँककर, मुख झुकाकर धीरेसे कह देंगी—'चलो !' कहाँ चलो, क्यों चलो, सो कुछ नहीं। कुछ पूछो, कोई उत्तर नहीं। जैसे बहरी हो। उसकी बात मानकर उसके पीछे चल दो तो ठीक। फिर तो पीछे खिसकेगी और ऐसे लुप्त होगी जैसे अदृश्य होनेकी विद्या आ गयी हो। तनिक देरमें स्वागत करने वालोंकी भीड़ आ जुटेगी।

यदि उसकी बात न मानकर बहुत आवश्यक काम भी बताकर, फिर आनेको कहकर चल देना चाहो तो ऐसे शरीर हिलाने लगेगी कि स्पष्ट

हो जायगा कि वह फूट-फूटकर रोने लगी है। इन लड़कियोंका भोजन कदाचित प्रतिदिन दो-चार बार रोये बिना नहीं पचता; किन्तु इनके रुदनकी उपेक्षा करना भी कठिन है। वह तो धीरेसे कह देगी—'नहीं चलोगे तो तुम्हारी लली मुझे अपनी सेवासे ही भगा देंगी।'

बेचारी भोली-लली किसी सखीको तनिक डाँट या झिड़क तो सकती नहीं; किन्तु अब इस रोनेवालीका क्या उपाय है आपके पास ? इसकी बात मानकर चलो या लली इसे सेवासे निकाल न दें, यह कहने उनसे चलो; किन्तु चलो। इसलिए बरसानेसे बाहर ही बाहर निकलना अच्छा रहता है।

कन्हाई इन सखोंकी चुटिया खींचकर इन्हें बुद्धिमान बना देता है, तब इन्हें उससे बोलना ही नहीं, झगड़ना भी आ जाता है। तब तो ये सब मिलकर उसे नचा भी लेती हैं।

'ललीको मैंने देखा है।' भद्र कभी कह भी देता है।

'कब देखा ? कैसे देखा ?' कोई सखा पूछ सकता है।

'ललीका क्या देखना।' भद्रका उत्तर है—'सब तो कहते हैं कि वह सुबल जैसी है और कन्हाई ही कहता है कि इसमे ललीको ठीक कभी देखा ही नहीं। लली भी कन्हाई ही जैसी तो होगी। कन्हाई ही कहाँ कभी पूरा देखा जाता है। इसकी हथेली, अँगुली, भुजा, मुख या वक्षपर जहाँ दृष्टि जाती है, वहीं अटक जाती है। इसे कोई एक बारमें पूरा देख कैसे सकता है। मुझे तो नहीं लगता कि ललीकी सहेलियोंने भी उसे पूरा कभी देखा होगा।'

हमारी वन-क्रीड़ामें अनेक बार लली अपनी सहेलियोंके साथ आ जाती है। कभी हम सब यमुना-तटपर खेलते होते हैं तो नन्ही कलसियाँ लिये सब जल भरने आती हैं और कभी सिरपर दहेंड़िया उठाये दही बेचने आती हैं। वनमें इन्हें किसे दही बेचना रहता है ? कपियोंको, मृगोंको या मयूरोंको ?

कन्हाई बहुत नटखट है। वह इन लड़कियोंको बहुत छकाता है। इनकी कलसियाँ लुढ़का देता है अथवा उनकी दहेंड़िया छीनकर दही खा-लुटा

देता है। सखाओंमें कम ही कन्हाईके इन उत्पातोंमें सम्मिलित होते हैं। केवल छोटे सखा कन्हाईका साथ देते हैं।

लड़कियाँ केवल कन्हाईसे झगड़ती हैं और दहेंड़ियाँ दुबकाती हैं। छोठे सखाओंको तो ये सब हँसकर स्वयं दहेंड़ी पकड़ा देती हैं। दाऊदादाको, मधुमङ्गलको, बड़े सखाओंको, हम सबको तो केवल सम्मान पूर्वक इस लूटमें भाग मिलता है।

अनेक बार तो कोई लाली ही लाकर दहेंड़ी धीरेसे सामने धर देती है—'तुम भोग लगाओ।'

इन सब उपद्रवोंमें लली अत्यन्त निरीह लगती है। वह छिपकर सखियोंके मध्य खड़ी रहती है या बैठ जाती है सिकुड़-सिमटकर। उसे झगड़ना कहाँ आता है। तोक भी उसके समीप पहुँचकर कह दे—'भाभी दही दे।' तो वह उल्लाससे दहेंड़ी पकड़ा देती है। कन्हाईको भी वह दहेंड़ी पकड़ा ही देती है। उसे दुबकाना कहाँ आता है। उसे तो देना ही देना आता है।

यह वन-क्रीड़ा और पनघट-क्रीड़ा भी चलती रहती है और लड़कियाँ बरसानेमें भी बनी रहती हैं तथा कन्हाईके और हम सबके अन्तःपुरमें भी। यह सब कैसे होता है, बुद्धि व्यर्थ मत लगाइये।

यह दिव्य लोक काम-लोक है। यहाँ किसीको कभी कोई अभाव होना शक्य नहीं है। यहाँ तो इच्छा होते ही सामग्री उपस्थित मिलती है और अपने लिए कभी कोई इच्छा किसीको नहीं होती। एक ही इच्छा होती है—'कृष्ण सन्तुष्ट रहे, प्रसन्न रहे।'

'यह वस्त्र, यह आभरण, यह अंगराग देखकर कन्हाई प्रसन्न होगा।' लड़कियाँ ऐसा अनुमान करके ही सम्भवतः सुसज्ज रहती हैं।

गोप-कुमारोंकी बात मैं जानता हूँ। अनेक बार सखा पगड़ीके ऊपर रस्सी लपेट लेते हैं। मणिमालाके स्थानपर गुंजाकी माला या कुंडल पहिन लेते हैं। कभी-कभी गोमयका तिलककर लेते हैं। यह सब इसलिए कि कन्हाईका उनकी ओर विशेष ध्यान जाय। नन्द-नन्दन उन्हें देखकर हँसे, उन्हें अंक-माल दे या उनका श्रृङ्गार करनेमें जुट पड़े।

लड़कियाँ इससे भिन्न और क्या चाह सकती हैं; किन्तु नटखट कन्हाई उनका श्रृङ्गार तो क्या करता होगा। कभी एकान्तमें श्रीकीर्तिकुमारीका श्रृङ्गार करता हो तो कहा नहीं जा सकता। अन्यथा यह तो लड़कियोंकी चोटी खींचकर, उनसे झगड़कर उनके श्रृङ्गार अस्त-व्यस्त ही करता है और फिर उन्हें चिढ़ाता भी है।

यह सब तो है; किन्तु बरसानेसे ढेरों उपहार आते हैं। ये उपहार पता नहीं किन-किन पर्वादिका निमित्त बनाकर आते ही रहते हैं। लड़कियाँ तो वस्त्राभरण पहिनकर दिखलाती फिरती हैं—'यह मेरे बाबाने भेजा है, यह मैयाने भेजा है। यह दादाने भेजा है। यह भाभीने भेजा है।' इन सबोंको अब भला यहाँकी कोई वस्तु क्यों प्रिय लगने लगी।

इसमें लड़कियोंका दोष भी नहीं है। कन्हाईको ही पदार्थ प्रिय नहीं लगते। पदार्थ अर्पण करनेवालेका प्रेम उसे प्रिय लगता है। कन्हाई तो माखन मुखसे लगाकर बतला देता है कि किसने उसे दधि-मन्थन करके निकाला है।

यह कन्हाईकी कोई बड़ी विशेषता नहीं है। यह इस प्रेम-लोककी ही विशेषता है। बरसानेसे उपहार हम लोगोंके लिए भी तो आते हैं। उनमें-से वस्त्र अथवा आभूषण भी धारण करो तो एक सौरभ आती है। वह सौरभ जो उसे प्रस्तुत करनेवालेके हाथोंसे उसमें आ बसी है। वह स्नेह, ममता, वात्सल्य या आत्मीयताकी सुगन्धि ही तो उसे प्रिय बनाती है।

अब बरसाने जाओ या मत जाओ, बरसानेके बाबा, मैया तथा दूसरे मधुर सम्बन्धोंके करोंकी सुगन्धि गृहमें, वनमें, अपने शरीरपर सदा छायी ही रहेगी तो बरसानेको स्मरण करना पड़ेगा ?

'ये इतने उपहार क्यों बार-बार आते हैं ? इनकी क्या आवश्यकता है ?' श्रीदामासे पूछा एक बार।

'तू चलकर बाबासे पूछ।'-श्रीदाम तो ऐसे हँसते-हँसते लोट-पोट होने लगा, जैसे कोई बहुत बेढंगी बात उसने सुन ली हो। अब वही इतना हँस रहा है तो उसके बाबासे भला कोई कैसे पूछ सकता है। वैसे भी उसके

बाबाके सामने तो बोलना ही कठिन हो जाता है। कन्हाई ही ऐसा है कि सबसे फटाफट बोलता है, बोलता ही चला जाता है।

'बड़े लोग स्नेहवश उपहार भेजते हैं।' दाऊदादाने पूछनेपर कहा— 'आवश्यकता देखकर देना तो कोई उदारता नहीं है। बड़ोंका स्नेह उमड़ता है तो उनसे कुछ दिये बिना रहा नहीं जाता। वह तो उनका एक प्रकारका प्रत्यक्ष आशीर्वाद है।'

'ललीको क्या प्रिय लगेगा ?' एक बार उसकी एक सहेलीसे पुछवा लिया। दूसरे दिन कन्हाईका कोई महोत्सव था। हम सब उसे और उसके अन्तःपुरके भी सबको कोई उपहार देना चाहते थे। सबने कुछ न कुछ सोच लिया। मुझे ललीसे ही पुछवाना ठीक लगा।

वह रंगदेवी तो तनिक देरमें आ गयी और बोली—'तुम्हारी ललीको तुम्हारा आशीर्वाद सबसे प्रिय लगेगा।'

यह भी कोई बात हुई ? लेकिन लली है ही ऐसी भोली कि वह दूसरा कुछ सोच ही नहीं सकती।

'अच्छा, इस लालीको क्या रुचेगा ?' मैंने रंगदेवीसे पूछ लिया।

'उसके लिए तुमको कष्ट नहीं करना पड़ेगा।' उस नटखट लड़कीने यह कहकर पैरोंके पाससे भूमिमें झुककर रज उठायी, सिरसे लगाया और भाग गयी।

ललीकी सहेलियाँ सब उसी जैसी तो होंगी। लेकिन कन्हाईने कई दिन पीछे कहा—'तूने उस दिन जो नीलमणि उपहारमें भेजी, तेरी लली उसे कण्ठसे उतारनेका नाम ही नहीं लेती।'

ललीकी सहेलियोंने भी उपहारोंको ऐसे ही अपनाया होगा, इसमें पूछने-जाननेकी कोई बात है ही नहीं।

यह प्रेम लोक, प्रेम मूर्ति कन्हाई और प्रेमके ही घनीभाव उसके परिकर। पदार्थ भी यहाँ सघन प्रेमके ही उल्लास हैं। इतनेपर भी लगता है कि बरसाना प्रेमके पयोधिका सम्भवतः पूर्णचन्द्र है। उसकी शीतल, स्निग्ध सुधा-ज्योत्स्ना हम सबको क्षण-क्षण स्नात किये ही रहती है। अनेक-अनेक रूपोंमें, अनेक-अनेक प्रकारसे उसकी मधुरिमा यहाँ सभीको आप्लावित करती है।

बरसाना अपरिचित है इसलिए कि भद्र वहाँ नहीं जाता। वहाँ कभी गया है, यही स्मरण नहीं उसे। वह वहाँके घरोंके सम्बन्धमें कम ही जानता है।

बरसाना अल्प परिचित है इसलिए कि भद्र चाहे या न चाहे, पूछे या न पूछे, बरसानेके दोनों ही राजकुमार श्रीदाम और सुबल उसके प्रिय सखा हैं। अत्यन्त अन्तरंग हैं। वे अपने भवन, अपने नगर, अपने पुरजन-परिजन ही नहीं, अपनी बहिनों तकके रूप-रंग, शील-स्वभाव, रुचि-गुण, वेशभूषा, क्रीड़ा-व्यवहारकी चर्चा बड़े उल्लाससे बार-बार करते हैं। आपकी चर्चा जहाँके लोग करते हों, वहाँ आपकी कैसे, क्यों और क्या चर्चा होती है, यह सुननेकी इच्छा, उत्सुकता आपमें न हो तो आप कोई महामुनीन्द्र होंगे। आपको बार-बार प्रणाम। भद्र कहाँ योगी-यती या ऋषि-मुनि है। वह तो सामान्य गोपकुमार है। उसे अपनी चर्चा-श्रवण भी अप्रिय नहीं और कन्हाईकी चर्चा-श्रवणका तो वह व्यसनी है।

बरसाना अत्यन्त परिचित भी है; क्योंकि घरमें और वनमें भी, तनपर और मनमें भी वहाँकी सुरभि सदा छायी ही रहती है। कन्हाई अपना हो और बरसाना पराया हो जाय, विस्मृत हो जाय, यह कभी सम्भव है ?

लेकिन बरसानेकी चर्चा तो विस्तारसे सुननेकी आशा आपको भद्रसे नहीं ही करनी चाहिए। इस चर्चामें रस-रुचि उसकी नहीं है। वहाँकी लड़कियोंको—ललीको और उसकी सब सहेलियों-लालियोंको वह आशीर्वाद ही दे सकता है और वे सब भी उससे इसीकी तो आकांक्षा करती हैं।

कन्हाई—

अकारण कन्हाईको श्रुति और संत अचिन्त्य-माहात्म्य नहीं कहते। यह समस्त विरुद्ध धर्मोंका आश्रय है। वस्तुतः तो यही-यही है। शेष सब तो इसीका लीला विलास है।

जगतमें हमको आपको जो कुछ दीखता है और पढ़ सोचकर जान पड़ता है, वह जड़ लगे या चेतन, कृष्णसे भिन्न तो है नहीं—'विनाऽच्युताद् वस्त्वितरां न वाच्यं।'

यह सम्पूर्ण जगत गोलोकका प्रतिविम्ब है—बहुत कुछ विकृत प्रतिविम्ब। मायाके सब त्रिगुणात्मक विकार इसमें प्रतीत होने लगे हैं; किन्तु है यह प्रतिविम्ब ही। इसे ठीक धारणामें ले सकें तो हमारे गोलोककी कुछ धारणा आपके मनमें आ सकेगी।

गोलोक कन्हाईका चिद्विलास। सम्पूर्ण लोक कन्हाईका, कन्हाईकी लीलाको व्यक्त करनेके लिए और कन्हाईको प्रीति प्रदान करनेके लिए है। लेकिन कृष्ण तो आनन्द-कन्द है। वह दूसरोंको तृप्ति-आनन्द देनेके लिए ही क्रीड़ा करता है। उसे कोई क्या आनन्द देगा।

गोलोक कन्हाईको आनन्द देनेके लिए और गोलोकके प्रत्येक स्वजनको उसकी रुचि, प्रवृत्ति, स्वभावके अनुसार परम परितृप्ति देनेके लिए कन्हाईकी चेष्टा-क्रीड़ा। इस अचिन्त्य-आनन्द क्रीड़ाके क्षेत्रका नाम गोलोक।

यहाँ प्रत्येकके एक साथ पता नहीं कितने रूप और एक साथ पता नहीं कितनी क्रीड़ा। देश-कालका यहाँ प्रवेश नहीं है। अतः अतीन्द्रिय अचिन्त्य इस लोकका वर्णन जगतके समान केवल सांकेतिक है।

हमारा कन्हाई आपके लिए भले सर्वेश्वरेश्वर, निखिल ऐश्वर्यैक-धाम, परमब्रह्म हो; किन्तु हमारे लिए तो अतिशय-सुकुमार और बहुत भोला है। प्रत्येकके साथ प्रत्येकके सदनमें सदा उपस्थित रहता है। प्रत्येकके

भावके अनुसार उसके साथ क्रीड़ा करता रहता है। किसीको लगता ही नहीं कि यह उसके पाससे कहीं जाता भी है और यदि जाता भी है तो वह भी क्रीड़ाकी पूर्णताके लिए।

अब सबके साथके इसके सम्बन्ध अथवा व्यवहारका वर्णन तो सम्भव नहीं है। अतः एकको लेना पड़ेगा। भद्रके सम्बन्धका वर्णन ही यहाँ चल रहा है। कन्हाई इतना भोला कि इसे रुष्ट होना भी ठीक-ठीक नहीं आता। उस दिन सबेरे-सबेरे आया और अपनी कनका-भाभीके सम्मुख अड़कर खड़ा हो गया। मुख पूरा फुलाकर पूरे वेगसे बोला—'भंजूस !'

कनका हँस पड़ी। भद्र समझ गया कि यह कहना तो चाहता है 'कंजूस' लेकिन इसे कंजूस अपर्याप्त लगता है। उसे भारी भरकम बनानेके लिए इसने 'भंजूस' बना लिया है।

'भंजूस क्यों ?' भद्र पूछनेवाला था; किन्तु इसका उसे अवसर नहीं मिला। पूछा हिरण्याने और यह उसे बोला—'धुद्धू !'

'यह धुद्धू क्या होता है ?' भद्रने पूछा।

'तू मुझे क्या कहता है ?' कन्हाईने पूछ लिया।

'तू बुद्धके दिन हुआ, इसलिए बुद्धू है।' भद्र हँस पड़ा।

'यह उससे बड़ी धुद्धू है।' कन्हाईने अपना तात्पर्य समझाया।

'लालजी, आज इन सबोंपर रुष्ट क्यों हैं ?' हेमाने समीप आकर स्नेहसे पूछा।

'फलंग !' कन्हाई अभी झल्लाया था। उसने हेमाको भी एक उपाधि जड़ दी।

'लालजी ! मैं फलंग, थलंग जो कहो सो सही।' हेमा वैसे तो तनिकमें तुनक जाती है; किन्तु कन्हाईसे कदाचित ही रूठती है। उसने स्नेह पूर्वक कन्हाईका दक्षिण-कर पकड़ा—'पहिले चलकर प्रातराश कीजिए।'

'दादा ! चल' कन्हाई अब प्रसन्न स्वर चहका—'पुजारिन भाभी अब तेरी और मेरी भी पूजा करेगी।'

यह जलपान करना चाहता था और कोई इस ओर ध्यान नहीं दे रही थी, इसलिए सबपर झल्ला रहा था। किसीको भंजूस, किसीको धुद्धू और किसीको फलंगकी फटाफट उपाधियाँ दिये जा रहा था।

'दादा ! यहाँ आ।' जलपान करके कन्हाई सन्तुष्ट हुआ तो भद्रसे बोला—'पुजारिन भाभीको पकड़।'

'लालजी, तुम यह ऊधम तो रहने दो।' हेमा लज्जासे लाल हो उठी।

यह अतीन्द्रिय लोक है। इसमें सब शरीर चिद्घन है। इनमें देहभेद केवल लीलाके लिए है और भौतिक देहोंके समान इन्द्रिय व्यवहार तो है ही नहीं। यहाँका सबका सब व्यवहार कन्हाईकी सन्तुष्टिके लिए। कन्हाई भाभी-भाईका मिलन देखना चाहता है, देखकर प्रसन्न होना चाहता है अथवा भाभीको यह पुरस्कार देना चाहता है; क्योंकि उसके संकेतके बिना तो यहाँ किसीमें अपनी ओरसे कोई कामना जागती नहीं। कामका इस चिन्मय-लोकमें प्रवेश ही नहीं। यहाँ तो सबकी सब समय एक ही कामना—कन्हाईको प्रसन्न करना। अतः भद्रने हेमाको आलिंगन किया।

ऐसा अवसर हेमाको कम ही मिलता है। इस दिव्य-धाममें भी उसकी प्रवृत्ति जप-पूजादिमें है। इसीसे कन्हाई उसे पुजारिन भाभी कहता है।

संसारके भौतिक शरीरोंके समान ऐन्द्रियक-संयोग तो यहाँ है नहीं। कहना ही हो तो इसे सर्वाङ्ग मिलन कहना किसी प्रकार उपयुक्त होगा। जैसे माखनके दो गोले परस्पर सटाकर दबा दिये गये हों, दोनों शरीर एक हो गये। कुछ क्षण (पर क्षणादि वहाँ हैं नहीं) प्रतीत होनेवाले देह, प्राण, मन सब घुले-मिले एक रहे और फिर पृथक हो गये। वस्त्र, आभरण सब यथावत्।

कन्हाई ताली बजा-बजाकर खिलखिला रहा है। भद्र उसकी प्रसन्नतासे प्रसन्न उससे सटा खड़ा है और लज्जा, संकोच, आनन्दातिरेकसे विह्वल हेमा वहाँसे भागकर अपने कक्षमें जा छिपी है। इस समय वह अपनी किसी सपत्नीसे भी मिलनेको प्रस्तुत नहीं है।

कन्हाईके लिए तो यह सामान्य विनोद है। ऐसे विनोद यह नन्द-तनय करता ही रहता है।

'लालजी, आज यह सब क्या पोत आये हो ?' भोला कन्हाई यह भी नहीं जानता कि अपने अन्तःपुरसे सीधे भाभियोंके यहाँ नहीं आना चाहिए। अब इसके भाल, कपोलपर कहीं अधर-राग या कुंकम दीखेगा तो भाभियाँ हँसेंगी, चिढ़ावेंगी ही।

'क्या लगा है ?' कन्हाई चौंके भले; किन्तु झेंपना या संकुचित होना इसे नहीं आता। उलटे ढिठाईसे कहेगा—'तूने क्या लगा दिया है ?'

'मैंने लगाया है या..................'

'तुम सब इसका मुख पोंछ या धो तो देती नहीं हो।' भद्रको यह रुचिकर नहीं है कि उसके छोटे भाईका कोई इस प्रकार परिहास करे। वह डांटेगा ही—'इसे क्यों खिझानेमें लगी हो।'

'इस भाभीने मुझे कुछ लगा दिया है।' कन्हाई यह भी नहीं समझता कि जो लगा है, वह भाभी कैसे लगा सकती है। लेकिन इस आरोपसे भाभी तो लज्जित होगी ही। वह कन्हाईका मुख थोड़े विलम्बसे भी पोंछनेवाली होती तो झटपट पोंछ देती।

'तू झटपट लेट जा !' कन्हाईको कब क्या धुन चढ़ेगी, कुछ ठिकाना नहीं। यह कभी किसी भाभीसे मचल सकता है।

'क्यों ?' भाभी तो चौंकेगी ही—'तुमको नींद आती हो तो तुम लेट रहो।'

'नहीं, तू लेट।' कन्हाई कारण बतानेमें कभी देर नहीं करता—'मैं तेरी चुटिया शैय्यामें बाधूंगा।'

'मुझे अपनी चोटी शैय्यामें नहीं बँधवानी।' दूसरी कोई बात कही भी क्या जा सकती है—'तुम अपनी बहूकी चोटी शैय्यामें बाँधो।'

'उसकी चोटी तो बहुत लम्बी है।' इस बातका खण्डन कोई नहीं कर सकता। श्रीकीर्तिकुमारीके भूलुंठित केशोंकी प्रशंसा तो सब करती हैं।

कन्हाई कहता है—'तेरी चोटी बाँध दूंगा तो तू खींच-खींचकर लम्बीकर लेना।'

कठिनाई यह है कि चोटी लम्बी करनेका यह प्रयोग कोई करनेको प्रस्तुत नहीं है।

तत्त्वज्ञोंका परमतत्त्व, परम ब्रह्म, चिन्मात्र कन्हाई इतना भुलक्कड़ है कि अपना पटुका चाहे जहाँ रखकर भूल जाता है और चाहे जिसकी साड़ी कन्धेपर डालकर चल देता है। ऐसे ही शुभ्राकी साड़ी लेकर चल पड़ा तो भद्रने स्नेहसे कहा—'तू ऐसे साड़ी कन्धेपर धरे जायगा तो मैया क्या कहेगी ? तेरा पटुका कहाँ है ? तू यह भी नहीं देखता कि यह दोनों ओर भूमिपर घिसट रही है।'

'अरे !' कन्हाई चौंका। पहिले तो इसने उस साड़ीको ही कन्धेपर समेटनेका प्रयत्न किया; किन्तु उसमें स्वयं लिपटकर गुड़ीमुड़ी हो गया। फिर झल्लाकर उसे नीचे फेंककर ऐसे घूरने लगा जैसे सबका सब दोष उस साड़ीका है।

'यह भाभीकी साड़ी है ?' अब भी जैसे इसे विश्वास न होता हो—'भाभीने मेरे पटुकेकी साड़ी बना दिया ? भाभी !'

अभी निश्चय नहीं कर पाया है कि इस अपराधके लिए किस भाभीसे झगड़ना चाहिए।

'लालजी, तुम्हारा पटुका इतना लम्बा है ?' शुभ्रा हँसते-हँसते दुहरी हो रही थी।

'और ऐसा रंग-बिरंगा भी ?' अब काञ्चना भी समीप आ गयी।

'तुम दोनोंने खींचकर पटुकाको लम्बाकर दिया।' कन्हाई समझता है कि खींचकर हर वस्तु लम्बी की जा सकती है। यह तो ह्रस्वाको भी कहता है—'भद्रदादासे कह, वह तुझे खींचकर थोड़ी लम्बी बना देगा।'

'तुम्हारा पटुका तो पीला है।' शुभ्राने स्नेहसे कहा—'मैं ढूंढ़ती हूँ कि तुम कहाँ रखकर भूल गये हो।'

'मैं कहाँ भूलता हूँ।' कन्हाईको अपना भूलना भी स्वीकार नहीं—'कोई छिपा देता है या परिवर्तित कर लेता है।'

'तुम्हारा पटुका परिवर्तित करके हम क्या करेंगी ?'

'कछनी बना लेगी।' कन्हाईकी बातपर काञ्चना दोनों हाथोंसे मुख ढंककर हँसने लगी, तब यह थोड़ा झेंपा। तब इसकी समझमें आया कि इसकी कोई भाभी कछनी नहीं बाँधा करती। पटुका तो मिलना ही था। शुभ्राने लाकर इसके कन्धेपर सजा दिया तब उसे ऐसे देखने लगा, जैसे पहिचान लेना चाहता हो कि इसीका पटुका है या भाभी कोई साड़ी इसके कन्धेपर रख रही है।

'बहू भाभी अच्छी है।' अब शुभ्राकी प्रशंसा अपने ढंगसे की—'तू कभी रुष्ट मत होना !'

'क्यों ?' शुभ्राने नहीं, काञ्चनाने पूछा।

'पुजारिन भाभी रुष्ट होती है तो उसका मुख हाथ भर लम्बा हो जाता है।' अपने मुखको पूरा लम्बा नीचे खींचकर इसने दिखाया तो दोनों हँसने लगीं। 'तुम दोनोंके मुख गोल हैं। तुम रुष्ट होगी तो तुम्हारा मुख फूलकर इतना बड़ा हो जायगा।' दोनों हाथोंसे भारी गोलेका संकेत करते इसने अपने कपोल वायु भरकर फुला लिए।

'तुम्हारी बहूका मुख कैसा है ?' शुभ्राने कटाक्ष पूर्वक ही पूछा।

'किस बहूका ?' बिना हिचके कन्हाईने पूछ लिया। यह हिचकना या झेंपना तो जानता नहीं और इसकी सखियों—बहुओंकी संख्या कोई सीमित है।

'उहूँ, मैं सखियोंकी बात कहाँ करती हूँ।' शुभ्राने अनखाते स्वरमें कहा—'तुम्हारी मुख्य बहू—श्रीनिकुञ्जेश्वरी।'

'तू देख आ।' भोलेपनसे कन्हाई बोला—'मैंने तो वह मुख कभी ठीक-ठीक देखा नहीं।'

'उसे ठीक देखा ही नहीं जा सकता।' काञ्चना गम्भीर हो गयी—'मैं उनसे छोटी हूँ। उनकी गोदमें भी खेली हूँ; किन्तु मैं ही नहीं जानती कि उनका मुख गोल है या लम्बा।'

'अभी-अभी लालजी अपना-मुख लम्बाकर रहे थे या फुला रहे थे ?' काञ्चनाने कुछ आर्द्र-स्वरमें कहा—'इनके एक कपोलको छोड़कर मुझे तो

इनका पूरा मुख तब भी नहीं दीखा। तुमने इनका पूरा मुख कभी देखा है जीजी ? इनका मुख गोल है या लम्बा ?'

'मैं तो इनकी नासिका ही देखती रह जाती हूँ।' शुभ्रा गम्भीर हो गयी। अनेक बार श्रीराधासे वह मिली है—गले मिली है। वे सम्मान करती हैं इन सबका—वे तो क्राञ्चनाका भी सम्मान करती हैं जो उनकी छोटी बहिन है; किन्तु उनके कर, नेत्र, पद जहाँ दृष्टि गयी, वहीं की होकर रह गयी। उनका श्रीमुख पूरा कहाँ कभी देखा जा पाता है।

'लालजी की ही भाँति वे जीजी भी हैं।' काञ्चनाने कहा—'इन दोनोंके किसी अंगका एक छोटा भाग ही एक बारमें देखा जा पाता है। इन्हें पूरे जीवन देखते रहो तो भी ये सदा अपरिचित ही रहेंगे।'

चर्चा गम्भीर हो गयी तो कन्हाई धीरेसे खिसक गया। इसे अपनी चर्चा सुननेका व्यसन नहीं है और गम्भीर न बना रहता, न किसीको बने रहने देता। यह तो अपनोंकी स्तुति-श्रवणका व्यसनी है। इसे गम्भीर बनाकर बैठाये रहना हो तो इसके किसी स्वजन, आश्रितकी गुण-चर्चा कीजिए। फिर यह सब चपलता भूलकर उसको दत्तचित्त होकर सुनेगा।

कन्हाईको सम्मुख किसीकी प्रशंसा करनेका रोग नहीं है। यह तो मुखपर भद्रको भी कह देता है—'यह तो भुने चने जैसा रूखा है। मुझे भी डाँटता है। सखाओंका सेनापति क्या है, बस से………ना………प………ति।' एक-एक अक्षर खींचकर चिढ़ानेके ढंगसे कहेगा। 'प' के पश्चात् 'ति' इतने ह्रस्वमें बोलेगा कि हँसी आ जाय।

पीठ पीछे तो कोई तोकको भी कह दे—'बच्चा है!' तो कन्हाई इसे भी नहीं सहता। विरोधमें कहेगा—'तुझसे अधिक बुद्धिमान है। मेरा छोटा भाई है। बहुत प्यारा भाई है।'

इसे कुछ दो तो सामने कह देगा—'यह तो खट्टा माखन है। तेरे योग्य नहीं है। मैं खाये लेता हूँ, जिससे इसे खाकर तेरे दाँत खट्टे न हों।'

लेकिन वहाँसे जाकर मैयासे, माँ रोहिणीसे, बाबासे और जो मिले उसीसे चटखारे ले-लेकर, मटककर कहेगा—'मेरे सखाने मुझे भर पेट माखन खिलाया है। सुधा ऐसी स्वादिष्ट कभी नहीं हो सकती। मेरा तो कण्ठ तक उदर भर गया है।'

किसीके कन्धेपर अपना पटुका धर देगा और कहेगा—'अब यह पुराना, म्लान पड़ा पटुका तू ही ढो।'

इसे कभी लगता ही नहीं कि यह किसीको कुछ देता है या किसीकी कोई सेवा-सहायता भी करता है। यह तो कहते थकता नहीं—'सखा मेरी सब सेवा करते हैं। भद्र मुझे न सम्हाले तो मैं एक घड़ी भी वनमें न रह पाऊँ और भाभियाँ तो इतना प्यार करती हैं, इतना खिलाती-सजाती हैं कि उन्हें मेरे पीछे अपनी चूटिया भी ठीक करनेकी सुधि नहीं रहती। मैं तो उन्हें एक पुष्प या किसलय भी नहीं दे पाता।'

कन्हाईका सबसे भोलापन कि इसे किसीके भी कोई दोष नहीं दीखते। अन्ततः यह उत्तम श्लोक है। इसे सबके उत्तम गुण ही दिखलायी पड़ते हैं।

'अमुक चोर है।' कन्हाईसे कह देखिये।

'सच ! तूने कैसे पता लगाया ?' यह प्रसन्न होकर ? ताली बजावेगा—'उसे अपना सखा बना। वह अपनी माखन-चोरीमें अच्छा सहायक सिद्ध होगा। वह तो सम्मान्य सखा बनेगा।'

ऐसा कोई दोष-दुर्गुण ढूंढ़ नहीं सकते आप जिसे यह व्रजराज-नन्दन अपने उपयोगका न मानता हो। बात ठीक भी है, इसके उपयोगका हुए बिना, इसकी अलक्ष्य अनुमतिके बिना तो कोई भाव अस्तित्त्व पा ही नहीं सकता।

यह आनन्दघन कन्हाई अपनोंका अत्यन्त अपना। इसके अतिरिक्त न कुछ दर्शनीय है, न चिन्तनीय और न सेवनीय। इसके अतिरिक्त भी कुछ है और वह इससे असम्बद्ध है, ऐसा कुछ आप ढूँढ़ कर पता तो लगाइये। फिर हमारी ओर से उसपर आपका पूरा स्वत्व।

कन्हाईको भी अपनोंके अतिरिक्त कुछ दूसरा पता नहीं है, यह पक्की बात। अतः यह अपनेके आस-पास ही सदा चक्कर लगाया करता है। उन्हींके सुख, सम्मान, प्रसन्नताके प्रयत्नमें व्यस्त रहता है।

उपसंहार—

अनधिकारी कोई भगवती भक्तिके लिए होता ही नहीं। धर्म केवल सशक्त, सक्षम, सावधान मनुष्यको पवित्र करता है। योगकी नींव ही यम-नियमपर स्थापित होती है। यम-नियम रहितका योग दिखावा मात्र न हो तो उसे रोगी बना देगा। साधन-चतुष्टय रहितका ज्ञान उसे भोगी भले बना दे, भ्रान्त करके भवमें ही भटकाता है। विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमूक्षा सम्यक् न हो तो ज्ञान केवल जानकारी बनकर रह जाता है; किन्तु भगवती भक्ति तो भुवन-पावनी हैं। प्राणिमात्रको उनके अंकमें स्थान है। तिर्यक-यौनिके पशु-पक्षी ही नहीं, अचर वृक्ष, पर्वत भी उनके अनुग्रहसे भगवत् प्राप्ति कर पाते हैं।

पतित-पावनी भगवती भक्ति ही हैं। समल अन्तःकरणको शुद्ध करके वहाँ अखिलेशकी आनन्द-क्रीड़ा भक्ति ही आविर्भूत करनेमें समर्थ हैं। अतः भक्ति देवी ही सर्वाश्रयाश्रय हैं।

संतों और शास्त्रोंने इसीलिए भक्तिके दो मुख्य भेद किये हैं, १—साधनात्मिका अथवा गौणी और २—साध्या अथवा मुख्या। लेकिन भक्ति कभी गौण नहीं होतीं। उनका साधनात्मिका रूप भी प्राणीका उद्धार करके उसे भगवद्धाम पहुँचा देनेमें पूर्ण समर्थ है।

भक्तिके नवधा भेदमें से १-श्रवण, २-कीर्तन, ३-स्मरण, ४-पाद-सेवन, ५-अर्चन, ६-वन्दन, ७-दास्य इनमें-से एक भी ऐसा नहीं है, जिसका नैष्ठिक अवलंबन करके जीवको परम-कल्याण न प्राप्त हो सकता हो।

श्रीहनुमानजी श्रीराम कथा-श्रवणके परम-रसिक हैं। राजा परीक्षितका कल्याण केवल सात दिनमें श्रवणके द्वारा ही हुआ। देवर्षि नारद कीर्तनका गुण वर्णन करते थकते नहीं। वे कहते हैं—'जब मैं उस उत्तम श्लोकके यशका गान करने लगता हूँ तो वे ऐसे मेरे चित्तमें ऐसे प्रकट हो जाते हैं, जैसे मैंने उन्हें बुलाया हो।'

स्मरण ही तो भजन है। भजनका अर्थ सेवा भले कर लो; किन्तु भगवत्सेवा होगी या तो श्रीविग्रहके अर्चन रूपमें अथवा स्मरण रूपमें। यह श्रीकृष्ण-स्मरण हृदयको श्रीकृष्णाकार कर देगा या नहीं ?

अर्चन होगा भगवन्मूर्तिके माध्यमसे। अर्चा विग्रह तो साक्षात् भगवान् हैं। अनेकों भक्तोंको अर्चा विग्रहमें साक्षात् श्रीहरिके दर्शन हुए हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा मीराका तो स्थूल देह ही अर्चा-मूर्तिमें लीन हुआ।

वन्दन स्मरणके बिना होगा ? वन्दन तो स्मरणसे विशिष्ट है; क्योंकि स्मरण तो आप शत्रुका तथा उदासीन, असम्बद्ध व्यक्तिका भी कर सकते हैं; किन्तु वन्दन तो श्रद्धा-समन्वित ही होगा।

दास्य उभयात्मक है। यह साधन भक्ति भी है और साध्य भाव भी। वस्तुतः दास्य सार्वभौम भाव है। सख्य, वात्सल्य और माधुर्यके भीतर भी दास्य अन्तर्निहित रहता है। जीव ईश्वरका नित्य दास है। अतः प्रपत्ति या शरणागति उसका सहज धर्म है।

संकटमें गोपियाँ और बाबा नन्दादि सभी दास्य भावापन्न हो जाते हैं और श्रीकृष्णकी शरण लेते हैं। नित्य सखा अर्जुनने तो गीताके प्रारम्भमें ही—**'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।'** की पुकारकी है।

अद्वैतकी दुन्दुभि बजानेवाले भगवान् शङ्कराचार्य भी कहते हैं—

'सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रस्य तरङ्गः क्वचिदपि नहि तारङ्गस्य समुद्रः॥'

भेदका भ्रम भाग गया, यह सत्य होनेपर भी नाथ, मैं आपका हूँ, आप मेरे नहीं हैं। समुद्रकी तरंगें होती हैं, तरंगोंका समुद्र नहीं हुआ करता।

'अहं ब्रह्मास्मि' तो श्रुति सिद्ध है; किन्तु 'ब्रह्म अहमेव' श्रौत-मार्ग नहीं है। लय अथवा अभेद सम्पादन प्रतीयमान व्यक्तित्वका, क्षुद्रका महत्‌में होता है। महत्‌का विलय क्षुद्रमें सम्भव नहीं है।

साध्या अथवा प्रेमात्मिका भक्ति दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य इन चार रूपोंकी भावात्मिका है। ये भाव सर्वथा स्वतन्त्र और नित्य हैं। इनमें परिवर्तन हो ही, यह आवश्यक नहीं है।

जैसे भगवानके अवतारोंमें श्रेष्ठ-कनिष्ठ कोई नहीं है। केवल लीला तथा शक्तिके आविर्भावके कारण उनमें अंश, कला तथा पूर्णावतारकी भावना की जाती है, वैसे ही भक्तिके प्रेमात्मक रूपोंमें कोई श्रेष्ठ-कनिष्ठ नहीं है। उनमें माधुर्यको श्रेष्ठ केवल एकान्तके नैकटयके कारण ही कहा जाता है।

माधुर्यको अपनानेवाले भी क्या सचमुच माधुर्यकी प्राप्ति करते हैं? भगवान् नारायणके साथ श्रीका, श्रीरामके साथ श्रीविदेह-नन्दिनीका और नन्द-नन्दनके साथ श्रीराधाका माधुर्यपूर्ण एवं परिपक्व है; किन्तु श्रीलक्ष्मी, श्रीजानकी अथवा श्रीराधाकी किंकरी, दासी, सखी, मञ्जरी भावकी जो उपासना है, उसमें मुख्य भाव दास्य है या माधुर्य यह विचारणीय है।

श्री और नारायणमें, श्रीसीतारामर्में, श्रीराधाकृष्णमें सर्वथा अभेद है, यह बात सर्वमान्य है। तब श्रीकृष्णके प्रति दास्य-भाव दास्य है और श्रीराधाके प्रति दास्य-भाव माधुर्य है, इस मान्यताका कोई ठोस आधार नहीं है। इसे माधुर्य केवल इसलिए कहा जाता है; क्योंकि इसमें नित्य-दम्पति किशोर-किशोरीकी एकान्त-क्रीड़ाका चिन्तन और उनके नित्य निकुंजमें प्रवेश तथा वहाँ सेवाके अधिकारकी प्राप्ति है।

इस अर्थमें ही माधुर्यके सम्प्रदाय प्रचलित हैं। देशमें जितने वैष्णव सम्प्रदाय हैं, उन सबमें दास्यका सम्प्रदाय तो है। श्रीरामानुजाचार्यका श्रीसम्प्रदाय और श्रीरामानन्दाचार्यका श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय मुख्यतः दास्य-भावके सम्प्रदाय हैं। यह दूसरी बात है कि इन दोनों सम्प्रदायोंमें माधुर्य-भाव भी पर्याप्त व्यापक है। श्रीरामानन्द-सम्प्रदायके अन्तर्गत तो सखी भाव—सखी-सम्प्रदाय अब बहुत व्यापक और प्रचलित हो गया है। श्रीकृष्णोपासकोंसे इस सम्प्रदायके भावुक रसिकोंकी भावना किसी प्रकार कम उत्कट नहीं है।

श्रीकृष्णोपासक सभी सम्प्रदाय श्रीराधाकृष्णोपासक हैं और सभी माधुर्य भावापन्न हैं। केवल श्रीवल्लभाचार्यका पुष्टि मार्ग साधनके लिए वात्सल्यका अवलम्बन श्रेष्ठ मानता है। बालकृष्णकी अर्चा, आराधना इस सम्प्रदायमें चलता है। लेकिन यह सम्प्रदाय भी लक्ष्य माधुर्य-भावको ही मानता है। अतः इसे वात्सल्य-भावका शुद्ध सम्प्रदाय नहीं कहा जा सकता।

यहाँ श्रीकृष्णोपासकोंमें महाराष्ट्रके बारकरी-सम्प्रदायकी चर्चा की जानी चाहिए। बारकरी-सम्प्रदाय मुख्यरूपसे श्रीद्वारिकाधीश श्रीकृष्णका आराधक है। इसीलिए इसमें—

'रुक्नाई विट्ठल' अर्थात् माता (आई) रुक्मिणी और विट्टल-श्रीकृष्णकी प्रधानता है। इस भेदके अतिरिक्त यह सम्प्रदाय सिद्धान्तकी दृष्टिसे भक्ति समन्वित अद्वैत वेदान्त स्वीकार करता है। उपासनामें इसमें दास्य भाव प्रधान है; क्योंकि आराध्य जब निखिल ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीद्वारिकानाथ हैं—तो उनका दास्य ही सुगम हो सकता है।

सख्य और वात्सल्य भावके कोई सम्प्रदाय नहीं हैं। यद्यपि सख्य और वात्सल्य भावापन्न परमभक्त-संत कम नहीं हुए हैं, उनकी परम्परा प्राचीन कालसे चली आ रही है; किन्तु उनका सम्प्रदाय नहीं चला। प्रचलित सम्प्रदायोंमें ही सख्य या वात्सल्य भावापन्न महापुरुष होते रहे हैं।

श्रीरामोपासकोंमें 'रामसखाजी महाराज' का सम्प्रदाय तो है; किन्तु उसमें भी सख्यभाव प्रधान रह नहीं गया। श्रीवल्लभाचार्यजीके सम्प्रदायमें तो उनके तथा उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजी और पौत्र गोस्वामी गोकुलनाथजीके समयमें जो प्रसिद्ध अष्टछापके कवि हुए हैं, उनमें सूरदासजी तथा कई दूसरे सख्य अथवा वात्सल्य भावापन्न है। इनमें चाचा वृन्दावनदासजीका वात्सल्य तो विख्यात ही है।

प्रसिद्ध सिन्धी संत कोकिल साईं, वृन्दावनकी महात्मा आनन्दीमाई वात्सल्य भावकी मूर्ति हुए हैं। ऐसे नाम और उदाहरण बहुत हैं। नैष्ठिक माधुर्य-भावके सम्प्रदायमें होते हुए भी प्रसिद्ध संत ग्वारिया बाबाजी श्यामसुन्दरके सखा थे। इस प्रकार सख्य तथा वात्सल्य भावापन्न संत सभी सम्प्रदायोंमें होते रहे हैं; किन्तु सख्य और वात्सल्यके सम्प्रदाय नहीं चले।

दास्यमें तो दास, दासानुदासकी परम्परा चलती है, अतः दास्यका सम्प्रदाय चलनेमें कोई कठिनाई नहीं है। माधुर्यमें भी मञ्जरी, सखी, दासियाँ अनुगता और आज्ञाकारिणी होती हैं। अतः माधुर्यमें भी गुरु-शिष्यकी परम्परा चल सकती है। वात्सल्यका यद्यपि कोई शुद्ध सम्प्रदाय नहीं है; किन्तु गुरु-शिष्य परम्परा चलना अशक्य नहीं है, क्योंकि माता-पिताकी दासियाँ, दास होते हैं और उनमेंभी वात्सल्य होता है।

उन्हें भी पालन-लालनका पूरा अवसर प्राप्त होता है; किन्तु सख्यमें जो अनुगत होते हैं, वे भी सखा ही होते हैं। उनमें बहुत कम ज्येष्ठ-कनिष्ठका भेद होता है। गुरु-शिष्य जैसे भेदको वहाँ अवकाश नहीं है। भले कोई सखा दूसरे सखासे कुछ सीखे; किन्तु दोनोंमें साम्यकी ही प्रधानता रहती है। अतः सख्य-भावका सम्प्रदाय चलना स्वाभाविक नहीं है।

दास्य सार्वभौम भाव होनेसे जीवको नित्य प्राप्त है; किन्तु सख्य, वात्सल्य और माधुर्यके सम्बन्धमें यह विवाद है कि ये किये जाते हैं अथवा प्राप्त होते हैं।

वैष्णव-शास्त्र और संत भी ज्ञानसे मोक्ष मानते हैं; किन्तु उनके ज्ञानका विशेष अर्थ है। सब प्राणी—सम्पूर्ण विश्व ही नित्यधामका प्रतिविम्ब है। अतः जगतमें जो कुछ है, उसका मूलविम्ब नित्यधाममें है। नित्यधाममें जिसका जो रूप है, उसे जान लेना ही ज्ञान है।

इस सम्बन्धमें स्कन्द-पुराणके श्रीमद्‌भागवत माहात्म्यकी यह कथा ध्यान देने योग्य है कि श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्धके पुत्र वज्रनाभ तथा श्रीकृष्णके स्वधाम-गमनके पश्चात् अवशिष्ट मथुरा आयी उनकी रानियोंको जब गोवर्धनके समीप उद्धवके दर्शन हुए, उद्धवके द्वारा श्रीमद्‌भागवत श्रवणका अवसर मिला तो वहाँ नित्यधाम तथा श्रीकृष्ण प्रकट हुए। उस समय वज्रनाभने श्रीकृष्णके दक्षिण चरणके वज्र चिह्नके रूपमें अपना मूल विम्ब पहिचान लिया। श्रीकृष्ण-पत्नियोंने भी मूलधाममें अपना वास्तविक रूप देख लिया, फलतः सब इस जगतके लिए अदृश्य होकर भगवद्-धामको प्राप्त हो गये। (स्कन्द-पुराण, वैष्णव खंड, भागवत माहात्म्य ३।६६-७२)

इस वर्णनका अर्थ निकलता है कि किया हुआ भाव नित्य नहीं है। नित्यधाममें जिसका जो रूप है, उसके अनुरूप भाव जब भगवत्कृपासे प्राप्त होता है, तब वह सच्चा होता है और प्रभावकारी होता है।

इसके विपरीत श्रीमद् भागवतमें ही आता है—

'यद् यद् धियात उरुगाय विभाव यन्ति तद् तद् वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय।'

'वपुः प्रणयसे' भले हो; किन्तु भगवद्-विग्रह अनित्य तो हो सकता नहीं।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवानने कहा—

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।'

इसके अनुसार भाव करनेकी स्वतन्त्रता प्राप्त होती है और भगवान्के प्रति कोई भाव सच्चा हो तो भगवान उसे स्वीकार कर ही लेते हैं।

इन दोनों मतोंका समन्वय यही हो सकता है कि किया गया भाव सच्चा तभी बनता है जब वह नित्यधामके अपने स्वरूपके अनुरूप हो।

इस सम्बन्धमें मुझे कुछ कहना नहीं है। मुझे केवल एक पद सुननेको मिला, जिसमें पद-कर्ता भावुकने कहा है—'मैं आपका कुत्ता हूँ। मेरे गलेमें पट्टा बाँधना और यदि मैं आपसे दूर जाने लगूँ तो मुझे बुला लेना।'

एक साधक मिले। उनकी भावना वात्सल्यकी है और वे अपनेको नन्द-भवनकी दासी मानते हैं। मैया यशोदाकी कृपासे उनके लालकी सेवा उनको प्राप्त होती है—ऐसी भावना करते हैं।

एक संतका एक आराध्य चित्र है। उसमें श्यामसुन्दरके समीप एक बछड़ा बैठा है और श्रीकृष्ण उसे सहला रहे हैं। संत कहते हैं—'मैं यही बछड़ा हूँ।'

इस प्रकारके गिने-चुने उदाहरणोंको छोड़ दें तो अधिकांश भावुकजन सखी भाव ही करते मिलते हैं। भगवान् किसी भावुक भक्तका हार्दिक भाव स्वीकार नहीं करेंगे अथवा अमुकका भाव सच्चा नहीं है, ऐसा कहनेकी धृष्टता तो भूलकर भी नहीं की जा सकती।

यहाँ केवल कहना यह है कि वात्सल्य और सख्यका कोई सम्प्रदाय न होनेके कारण भक्तिशास्त्रके जिस साहित्यका विस्तार हुआ, उसमें दास्य एवं माधुर्यका ही विस्तार हुआ। श्रीरामानुजाचार्यके सम्प्रदायके साहित्यमें दास्य भावका तथा मध्वगौड़ेश्वर-सम्प्रदायके साहित्यमें माधुर्य भावका बड़ा विस्तृत निरूपण हुआ।

श्रीवल्लभाचार्यके सम्प्रदायमें अवतार-लीलापर विवेचन है; किन्तु अन्य वैष्णव-सम्प्रदाय दिव्य-धामकी लीलाके भक्त हैं। उनमें वैकुण्ठका वर्णन हो या गोलोकके नित्यनिकुञ्जका, उसे पढ़कर ऐसा लगता

है जैसे नित्यधाममें ऐसा परमैश्वर्य है कि वहाँ केवल दास्यको—माधुर्य-भावमें दासी-भावको ही स्थान है। यदि यत्किञ्चित् स्थान है तो वात्सल्यको; किन्तु वह भी बहुत गौण रूपसे अत्यल्प। सख्य तो जैसे वहाँ है ही नहीं।

भगवान् नारायणके साथ उनके पार्षद हैं और उनकी चरणार्चनमें लगी भगवती श्री हैं। साकेत हो या गोलोक, वहाँ सेवक और दासियाँ—श्रीवैदेही अथवा श्रीराधाकी सहेलियाँ कह लीजिए, वे हैं और श्रीजानकी या श्रीराधा जो अपने नित्य-लोकाधीशसे अभिन्ना हैं।

'न आदि न अंत बिहार करें दोऊ।'

इस वाणीके अनुसार या तो अखण्ड अनन्त विहार है या ऐश्वर्य।

लेकिन यदि नित्य-लोकमें सख्य एवं वात्सल्यकी नित्य-क्रीड़ा नहीं है तो भक्ति-शास्त्र सख्य तथा वात्सल्यको साध्य-भाव मानता ही क्यों है? इनकी परम सार्थकता क्या है? यदि जगत नित्यधामका प्रतिविम्ब है तो यहाँ वात्सल्य और सख्य प्राणियोंमें आया कहाँसे? अवतार कालमें भगवानके नित्यधामका भी अवतरण होता है, यह सब वैष्णवाचार्योंको मान्य है। उस समय जो सख्य, वात्सल्यकी विस्तृत लीलायें होती हैं, वे यदि नित्यधाममें हैं ही नहीं तो क्या असुर-वधके सामन वे केवल क्षणिक जागतिक लीलाएँ हैं? यह भी कोई कहनेका साहस नहीं करता। सब इनको नित्य-लीला ही मानते हैं।

वात्सल्यका वर्णन छोड़कर माधुर्यका विवेचन भी पूर्ण नहीं हो सकता था, अतः भले कम हो; किन्तु वात्सल्यका वर्णन है। दूसरी बात यह कि मैं इसके वर्णनका अधिकारी नहीं हूँ। वात्सल्यके वर्णनके लिए असीम वात्सल्य-पूर्ण मातृ या पितृ हृदय चाहिये।

सख्य रस या भावका भी विवेचन यहाँ नहीं है। यह तो गोलोकके एक परिवारका—भाई या सखाके परिवारका वर्णन है। अवश्य ही इससे यह भावना करनेमें सहायता मिल सकती है कि गोलोकमें सख्य भावापन्नकी क्या स्थिति होती है।

सम्पूर्ण गोलोक अनन्त होकर भी एक परिवार ही है। अतः उसका वर्णन सम्भव नहीं है। एक परिवारके वर्णनकी दृष्टिसे भी यह बहुत अपूर्ण है; क्योंकि बहिन, बहिनके स्वसुर गृहके स्वजन, ननिहालके सम्बन्धी परिवारके अन्तर्गत ही आते हैं और उनकी इसमें चर्चा ही नहीं है।

कन्हाईको ही लिखवाना होता है, अतः इसने जितना जैसा लिखवाया, उतना ही यह बना। इसमें कन्हाईकी चर्चा-चिन्तन प्रधानता प्राप्त करना ही था और इस नन्द-तनयके चिन्तनमें ही सबकी सार्थकता है। दूसरोंकी चर्चा, वर्णन तो इसकी क्रीड़ा-व्यक्त करनेके माध्यम मात्र हैं।

॥ शुभम् ॥